UNIVERSAL LIBRARY

OU_178937

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—787—13-6-75—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1 K92B Accession No. P.G.H5

Author कृष्ण बलदेव वैद.

Title बीच का दरवाजा.. 1963.

This book should be returned on or before the date last marked below.

बीच का दरवाज़ा

लेखक की अन्य कृतियाँ

उसका बचपन : उपन्यास

बीच का दरवाज़ा

(कहानी संग्रह)

कृष्ण बलदेव वैद

नीलाभ प्रकाशन

५, ख़ुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद—१

● प्रथम संस्करण : १६६३

● मूल्य : 12|.

● आवरण : रामकुमार

● प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन

५, खुसरो बाग़ रोड इलाहाबाद—१

● मुद्रक : पीयरलेस प्रिंटर्स

४, बाई का बाग़, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

●

हिन्दी के नये कथाकारों में श्री कृष्ण बलदेव वैद बड़ी तेज़ी से आगे आये हैं। कहानियों की अपेक्षा पाठकों और आलोचकों का ध्यान उन्होंने पहले-पहल अपने उपन्यास 'उसका बचपन' से आकर्षित किया। यद्यपि यह उपन्यास हिन्दी के बहुत ही अच्छे उपन्यासों में गिना जाने योग्य है, लेकिन इसे हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहा जाय कि उसे ख्याति पश्चिम में मिली। गत वर्ष यह 'ओरियान प्रेस' न्यूयार्क से 'स्टेप्स इन डार्कनेस' के नाम से छपा और उसकी खूब प्रशंसा हुई। 'डलाज़ मार्निङ्ग न्यूज़' ने उसके सम्बन्ध में लिखा :

"स्टेप्स इन डार्कनेस इज़ कंट्रोल्ड एण्ड सेंस्टिव आर्ट। टु रीड इट इज़ टु एक्स्पीरिएँस लाइफ़ थ्रू द इमोशन्ज़ एण्ड द सेंसिज़, ऐज़-वेल, ऐज़ मीयरली थ्रू सेल्फ़ कान्शस इन्टलेक्ट।" *

'उसका बचपन' में जिस पैनी दृष्टि, शैली के जिस संयम, अभिव्यक्ति की जिस गहराई और व्यंग्य के जिस तीखेपन के दर्शन होते हैं, वह सब श्री वैद की इन कहानियों में पाठक को मिलेगा।

स्थितियों को देखने का ढंग श्री वैद का नितान्त अपना है, जो किसी भी नये पुराने कथाकार से मेल नहीं खाता।

जामुन की गुठली—में बस की प्रतीक्षा में रुके हुए एक निम्न मध्यवर्गीय युवक की आँखों से जामुन बेचने वाले कंजूस और शातिर खोंचा फ़रोश और एकाध जामुन के लालच में बड़ी तत्परता से काम करने वाले छोकरों का चित्रण श्री वैद ने जिस बारीकी से किया है, वह उन्हीं का हिस्सा है।

---

* 'स्टेप्स इन डार्कनेस' संयत और भावप्रवण कला का नमूना है। इसे पढ़ना जीवन को भावनाओं, इन्द्रियों तथा ऐसी बुद्धि के माध्यम से जीना है, जो अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हैं।

उड़ान—में लेखक ने एक दिन के लिए गृहस्थी के सारे बन्धन तोड़ कर उड़ जाने वाली अति साधारण गृहणियों का चित्रण किया है और ऐसी खूबी से किया है कि जब शाम को वे वापस घर आने की सोचती हैं तो उनका ही नहीं, हमारा मन भी उदास हो आता है।

टुकड़े और खामोशी—वातावरण प्रधान कहानियाँ हैं, पर उस वातावरण के माध्यम से दो विचित्र पात्रों, उनकी स्थितियों और ग्रन्थियों का चित्रण बड़ी ही कुशलता से लेखक ने किया है।

बदबूदार गली—इस देश के हर शहर में आज भी मिल जायगी। इतनी यथार्थता और कुशलता से श्री वैद ने उसका चित्रण किया है कि वह गली, उसकी बदबू और उस बदबू में रहने वाले पात्र ठोस हकीकत बन कर हमारे सामने आ जाते हैं।

लछमनसिंह—का भोला अहं मन को बेतरह छू जाता है और साथ ही ऐसे नौकर की समस्या को हमारे सामने उजागर कर देता है, जिसके सीने के किसी गोशे में खुदी की नन्ही सी क़न्दील टिमटिमा रही है। लेखक ने इस समस्या को व्यंग्य के माध्यम से हमारे सामने ला रखा है। लेकिन वह व्यंग्य बदबूदार गली के व्यंग्य-सा कटु नहीं, हास्य का पहलू लिये हुए है। ऐसा ही हास्य-भरा व्यंग्य '**बीच का दरवाज़ा**' में पाठकों को मिलेगा।

एक था विमल—एकदम अलग तरह की कहानी है—अत्याधुनिक और प्रभावशाली, लेकिन इस प्रयोग के माध्यम से लेखक ने कितनी ही बारीक बातें कह दी हैं।

और यों श्री वैद के यहाँ वस्तु, शैली और शिल्प की अपूर्व विभिन्नता पाठकों को मिलेगी।

आशा है कि प्रस्तुत कहानी संग्रह हिन्दी के नये कथा साहित्य में अपना उचित स्थान पायेगा और श्री वैद हमें उत्तरोत्तर अच्छी कहानियाँ देंगे।

—प्रकाशक

अनुक्रम

●

बीच का दरवाज़ा : ११
उड़ान : २३
एक बदबूदार गली : ३३
टुकड़े : ४७
ख़ामोशी : ६४
जामुन की गुठली : ८६
माई की महिमा : ११३
लच्मन सिंह : १३८
एक क़ुतुब मीनार छोटा-सा : १५२
एक था बिमल : १६६

●

अपने दोस्तों के नाम

बीच का दरवाज़ा

और

वैद की अन्य कहानियाँ

बीच का दरवाज़ा

बाबू रामदास खन्ना और मैं पिछले नौ-दस महीनों से एक ही मकान में रहते आ रहे हैं। उन के पास एक कमरा और रसोई घर है और मेरे पास सिर्फ़ एक कमरा। मेरा कमरा उन के कमरे से ज़रा छोटा है। एक कमरा स्टोर का और है जिसे मालिक मकान ने बन्द कर रखा है। वह स्वयं दरियागंज में रहता है जहाँ सड़क के किनारे उस का एक दो-मंज़िला मकान है। सुनता हूँ वह इस मकान से दुगुना बड़ा है और उस में उस के बड़े लड़के के अलावा एक किरायेदार भी है। हर महीने की दूसरी तारीख की शाम को मालिक मकान स्वयं या उस का कोई आदमी आता है। और मुझ से ३५) और बाबू रामदास से ४५) किराये के ले कर चला जाता है, और मिसेज़ रामदास के कथनानुसार हमारे सिर से एक बोझ उतर जाता है।

मेरे कमरे का एक दराज़ा बाबू रामदास के कमरे में खुलता है। इस दरवाज़े की चिटख़नी मैं ने अपनी तरफ़ से चढ़ा रखी है और बाबू रामदास ने अपनी तरफ़ से इस के साथ-साथ ट्रंकों की एक दीवार खड़ी कर रखी है जिस पर बैठ कर बाबू रामदास का छोटा

बच्चा ट्रंकों ही को ढोल समझ उन्हें ज़ोर से बजाया करता है और जब वह इस शग़ल में एकदम तल्लीन हो जाता है तो धड़ाम से कभी फ़र्श पर और कभी साथ लगी चारपाई पर जा गिरता है। जब चारपाई पर गिरता है तो खूब किलकारियाँ मारता है और मिसेज़ रामदास—जिन के लिए मेरा प्राइवेट नाम 'पीली कबूतरी' है—जहाँ भी होती हैं दौड़ कर उसे गोद में उठा लेती हैं, ज़ोर-शोर से चूमने-चाटने लगती हैं, बच्चा अधिक खिलखिलाता है और वह दाँत पीस-पीस कर कहती हैं, "मेरा छोटा-सा बाबू, मेरा अफ़सर है, मेरा थानेदार....।"

लेकिन जब कभी वह छोटा-सा बाबू मैं तो उसे लगभग थानेदार के नाम से ही पुकारता हूँ—धड़ाम से फ़र्श पर गिरता है हो चख़-चख़ कर रोता है, साँस-से-साँस नहीं मिला पाता और मिसेज़ रामदास जहाँ भी होती हैं दौड़ कर उसे गोद में उठा लेती हैं। उस के बाद उन के कमरे में काफ़ी कुहराम-सा मचा रहता है। सारा कुनबा इस समस्या पर बहस करने लगता है कि ट्रंकों के लिए कौन-सा ऐसी जगह बनायी जाये कि मुन्नू (इस घबराहट में उस को सारी अफ़सरी शान-शौकत मिट्टी में मिल जाती है) जब गिरे तो किसी-न-किसी चारपाई पर ही। फिर बहुत देर तक ट्रंकों को उठा-उठा कर और घसीट-घसीट कर इधर-उधर रखने की 'किचिर' 'किचिर' कानों में आती रहती है सब चीज़ें उलट-पुलट कर दी जाती हैं और ले-दे कर ट्रंक फिर अपनी पुरानी जगह पर ही लगा दिये जाते हैं।

क्यों कि बाबू रामदास का कमरा, यद्यपि मेरे कमरे से बड़ा है लेकिन उस में उन का छोटा-मोटा घरेलू सामान् ठसाठस भरा रहता है और ट्रकों के लिए उस से उपयुक्त स्थान निकालने की कोई सम्भावना नहीं। कई बार ऐसे मौक़ों पर बाबू रामदास एक सुझाव देते

जिसे 'पीली कबूतरी' एकदम रद्द कर देती हैं। वे कहते हैं, "नीचे के दो ट्रंकों को छोड़ बाकी सब खाली पड़े हैं, क्यों न इन्हें बेच दिया जाये, किसी कबाड़ी के पास? फ़ज़ूल इतनी जगह घेरे हुए है।" लेकिन एक दिन बातों-बातों में, शरारतन समझिए या यों ही, मैं ने उन से वे दोनों-तीनों खाली ट्रंक मुँह-माँगी क़ीमत पर ख़रीद लेने की इच्छा प्रकट की थी, जिस के उत्तर में बाबू रामदास धीरे से मुस्करा दिये थे। साधारण अवस्था में वे इतना कम मुस्कराते हैं कि मैं समझता हूँ कि ठंडे दिमाग से सोचने पर ट्रंकों को बेचना स्वयं बाबू रामदास को बेहूदा दिखायी देता होगा।

एक और प्रस्ताव जो हमेशा मिसेज़ रामदास की तरफ़ से आता है उस के बारे में मेरी अपनी तो यही राय है कि किन्हीं विशेष कठिनाइयों के कारण वह भी कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है, यानी जब वह रोते-हकलाते थानेदार को गले से लगा कर यह माँग करने लगती हैं—"क्यों नहीं कोई दो कमरे वाला मकान ढूँढ़ लेते?" तो कम-से-कम मुझे तो यही लगता है जैसे वह कह रही हों, "क्यों नहीं तुम आकाश से दो तारे तोड़ लाते?" कुछ भी हो दो कमरों वाला मकान बाबू रामदास और मेरी आमदनी के लोगों की पहुँच से बहुत परे है।

उन की इस मुश्किल को हल करने के लिए एक तजबीज़ मैं ने भी पेश की थी जिस पर कुछ देर ग़ौर करने के बाद बाबू रामदास ने उसे रद्द कर दिया था। वह प्रस्ताव यह था कि खाली ट्रंक तो रख दिये जायें मेरे कमरे में और नीचे के दोनों ट्रंकों दोनों चारपाइयों के नीचे ढकेल दिये जायें, बीच का दरवाज़ा खुला रहे ताकि जब मुन्नू थानेदार का जी चाहे वह घिसट-घिसट कर मेरे कमरे में आ जाये क्यों कि मेरे कमरे में जगह काफ़ी है। उन ट्रंकों को अलग-अलग रखा जाये जिस

से थानेदार साहब के गिरने के 'चान्सिज़' भी कम हो जायें और अगर कभी वह गिर भी पड़ें तो अधिक चोट न आये। रविवार को छोड़ बाकी दिन तो मैं वैसे भी दिन भर दफ़्तर में रहता हूँ। इसलिए मुझे कोई कष्ट नहीं होगा और सब काम ठीक हो जायेगा।

कहने को तो मैं ने कह दिया, क्यों कि बाबू रामदास और मैं दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। एक ही दफ़्तर में काम करते हैं और उन की धर्म-पत्नी को मैं 'चची' कह कर पुकारता भी हूँ, लेकिन कहते समय मैं शायद यह भूल गया कि बाबू रामदास की दोनों बड़ी लड़कियाँ जवान हैं और मैं खुद अगर जवान नहीं तो बूढ़ा भी नहीं हूँ, अकेला हूँ, कुँआरा हूँ, और कुछ भी हो पराया हूँ। अगर दरवाज़ा खुला रहे और इस तरह खुला आना-जाना शुरू हो जाये तो कहीं कोई मुसीबत खड़ी हो सकती है। यह सब बातें मनगढ़न्त नहीं, बल्कि अपने कानों सुनी हैं, क्योंकि बाबू रामदास के कमरे में जो बात होती है मेरे कमरे में साफ सुनायी देती है। मैं समझता हूँ कि मेरे पड़ोसियों का यह भय सिर्फ़ उचित ही न था बल्कि ज़रूरी भी। क्योंकि जवानी का आखिर क्या ठिकाना है।

और इन सब के अलावा दो-एक सुझाव और भी हैं, जिन पर शायद बाबू रामदास और उन के घर वालों को सब से पहले ध्यान देना चाहिए था। पहला यह कि बच्चे को अगर ढोल ही बजाना है तो क्यों न उसे बाज़ार से एक ढोल ला दिया जाये ? पर कदाचित् बाबू रामदास इस बात से डरते हैं कि आज उसे ढोल ला कर देंगे तो कल दूसरी बच्चियाँ किसी दूसरी चीज़ का तकाज़ा कर बैठेंगी, तब उन्हें न कैसे करेंगे ? और फिर बाज़ार के ढोल ज़्यादा देर चलते भी तो नहीं। तो दूसरा सुझाव यह कि क्यों न दुलार-पुचकार कर मुन्नू की यह आदत ही छुड़ा दी जाये ताकि बाबू रामदास की चहेती कहावत

के अनुसार न रहे बाँस और न बजे बाँसुरी।

लेकिन सवाल यह पैदा होता है कि अगर कभी-कभी मुन्नू को इन ट्रंकों पर न बैठाया जाये तो कहाँ बैठाया जाये ? दोनों चारपाइयों पर दोपहर को 'पीली कबूतरी' और बड़ी लड़कियाँ रानी और शीला लेट जाती हैं। बीच में दो या तीन मुरब्बा फ़ुट जगह खाली बचती है जिस में छोटी लड़कियाँ मुन्नी और देशी बैठ कर स्कूल का काम करती हैं। अब यदि थानेदार साहब सोये हुए हों तो उन्हें कहीं भी डाल दिया जाय कोई फ़र्क नहीं पड़ता, लेकिन यदि जागते हों तो उन्हें मुन्नी और देशी के पास नहीं बैठाया जा सकता क्योंकि वे उन की कापियाँ किताबें नोचने लगते हैं, एक ही झपट्टे में उन की सारी स्याही मुँह पर पोत लेते हैं, उन की कलम-पेन्सिल चबाने लगते हैं और फिर हुमक-हुमक कर यह माँग करने लगते हैं कि उन्हें ट्रंकों पर बैठाया ही जाय।

बात असल में यह है कि या तो शुरू से ही यह आदत न डाली जाती, लेकिन अब उन के इस अत्यधिक शौक़ को सिरे से उपेक्षित कर देना उन के साथ अन्याय के बराबर होगा। क्योंकि बावजूद उन तमाम चोटों के जो अभी तक ट्रंकों से गिरने के कारण थानेदार साहब को आयी हैं, उन्हें जो लुत्फ़ ट्रंकों पर बैठ कर कर ढोल बजाने में आता है उस का कोई मुकाबला नहीं। फिर कभी-कभी वहाँ बैठे-बैठे उन्हें साथ वाली दीवार पर से कोई छिपकली फिसलती नज़र आ जाती है तो वे हँस-हँस कर लोट-पोट होने लगते हैं। दरअसल दीवार पर रेंगती हुई छिपकली उन के लिए इतना आकर्षक दृश्य है कि जब हर रोज़ सुबह वह बाबू रामदास के साथ जाने के लिए ज़िद करते हैं तो कोई उन्हें झूठमूठ भी कह दे मुन्नू वह देखो किल्ली ! तो उन का ध्यान बाबू रामदास की तरफ़ से हट जाता है और वे ट्रंकों की उस

दीवार की ओर हाथ फैलाने लगते हैं।

तो किस्सा मुख़्तसर : ट्रंकों की दीवार अभी तक अपनी जगह पर स्थित है और जब कभी रविवार के दिन सुबह-सबेरे खटाक-खटाक ऊपर के दो-तीन ट्रंक उतार कर नीचे रखे जाते हैं तो मैं अपने कमरे में पड़ा-पड़ा अन्दाज़ लगा लेता हूँ कि आज मिसेज़ रामदास, रानी और शीला में से किसी एक को साथ लेकर, अस्पताल जाने की तैयारी कर रही हैं। सुनता हूँ 'पीली कबूतरी' का पीला रंग, जिस के कारण मैं ने मिसेज़ रामदास को यह अजीब-सा नाम दे रखा है, कैलशियम की कमी से है। उन को हमेशा आधे-सिर का दर्द भी रहता है जिस का एक कारण शायद यह भी हो कि पिछले तीन-चार महीनों से वह एक-एक करके अपने सब दाँत निकलवा रही हैं जिन में एक वर्ष हुआ कीड़ा लग गया था। इसलिए उन का अस्पताल जाना बाकायदा एक प्रोग्राम का रूप ले चुका है।

यह प्रोग्राम रविवार के दिन ही रखा जाता है, क्योंकि बाक़ी दिन तो बाबू रामदास सुबह नौ बजे दफ़्तर जाते और शाम को छह और सात के लगभग वापस लौटते हैं। दोनों छोटी बच्चियाँ स्कूल चली जाती हैं और बड़ी लड़कियों को अकेला घर पर छोड़ जाना मिसेज़ रामदास अच्छा नहीं समझतीं। बहरहाल रविवार को जब मिसेज़ रामदास अस्पताल चली जाती हैं तो बाबू रामदास मुन्नू को उठा कर मेरे पास आ बैठते हैं और काफ़ी देर तक बैठे रहते हैं—या कम-से-कम कुछ दिन पहले तक तो उन का यही नियम था, इधर कुछ दिनों से कुछ खिंचाव-सा हो गया है।

बात तो छोटी-सी थी, मगर मेरी आशा के विरुद्ध उन्हें शायद चुभ ही गयी। सोचता हूँ ग़लती मेरी ही थी अगर बोलने से पहले मैं ने बात को तौल लिया होता तो यह स्थिति न पहुँचती। हुआ

दरअसल यों कि कुछ दिनों से मैं देख रहा था कि बाबू रामदास हर वक़्त एक ही बात को पीसते रहते हैं। दफ़्तर जाते समय, दफ़्तर से घर पहुँच कर, रात को, रविवार के दिन, जैसे कि वह बात उन के सिर पर सवार हो गयी हो। इन नौ-दस महीनों में मैं ने बाबू रामदास के अनगिनत दुखड़े अत्यन्त सहृदयता से सुने हैं, वे जो उन्होंने सीधे मुझ से कहे और वे भी जिन की चर्चा उन के अपने कमरे में हुई। उन की कई शिकायतों को दूर करने के लिए उन के साथ बैठ कर सोच-विचार किया है। मुझे उन के साथ सहानुभूति है कि जब वे मुँह लटकाये, दृष्टि नीची किये, धीरे-धीरे अपनी परेशानियों का वर्णन दुखद लहजे में करते हैं तो मुझे, अपने पिता याद आ जाते हैं।

वैसे भी मेरे दिल में मिसेज़ रामदास और बाबू रामदास के लिए बड़ा आदर है, क्योंकि सब मुश्किलों के बावजूद कभी वे आपस में लड़े-झगड़े नहीं, कभी बाबू रामदास ने गुस्से में रोटी की थाली को ठोकर नहीं मारी और कभी मिसेज़ रामदास ने मैके चले जाने की धमकी नहीं दी। कभी उन्होंने मुझे यह नहीं अनुभव होने दिया कि वे जीवन से निराश हैं। मैं इन सब बातों की इसलिए भी प्रशंसा करता हूँ, क्योंकि हमारे अपने घर में हर समय सिर-फुटौवल होती रहती है, कोई किसी से सीधे मुँह बात नहीं करता। ख़ासकर माँ तो बात-बात पर आपे से बाहर हो जाती हैं और कभी-कभी तो इतना परेशान करती हैं कि हम सब को नानी याद आ जाती है कि जिस की बदौलत हमें ऐसी माँ प्राप्त हुई।

यह सब है फिर भी बाबू रामदास और मेरी उमर में बरसों का अंतर है, इसलिए कभी-कभी उन की बातों से थोड़ा-सा ऊब भी जाता हूँ। जिस बात पर कुछ दिन हुए नाराज़ हो गये, उस ने तो मेरी नाक में दम कर दिया था। क्योंकि जाने हुआ क्या कि उठते-बैठते जहाँ

मिलते, जब मिलते, जितनी देर के लिए मिलते, बस वही एक रट, "रानी इतनी बड़ी हो गयी है नरेन्द्र साहब ! अब तो इस ने एफ़० ए० की परीक्षा भी दे दी। हमारी तो नींद हराम हो गयी है। कोई लड़का मिल जाय तो........। लेकिन लड़का हम जैसों को कहाँ से मिलेगा ? लड़कों के दिमाग तो सातवें आसमान पर हैं। कुछ पल्ले हो या न हो, घर ऊँचा ढूँढ़ते है, अब आप ही बताइए नरेन्द्र साहब, हम क्या करें ?"

अगर मैं उन की दिलजोई करने के ख़याल से कहता, "घबराइए नहीं सब ठीक हो जायेगा" तो फ़ौरन जवाब देते, "आप नहीं समझते नरेन्द्र साहब ! जब किसी के घर एक लड़की पैदा होती है तो घर की दीवारें काँप उठती हैं और इधर तो एक नहीं चार हैं चार।" अगर मैं कह देता कि मुन्नी, देशी तो अभी छोटी हैं, शीला ने भी इसी वर्ष मैट्रिक का इम्तहान दिया है, अभी तो रानी ही की चिन्ता कीजिए तो वे कहने लगते, "आप भी भोले बादशाह हैं नरेन्द्र साहब ! लड़कियों को बड़े होते क्या देर लगती है ? आज इतनी कल उतनी ! रानी और शीला में तो वैसे भी कोई फर्क नहीं। मैट्रिक का इम्तहान बेशक उस ने अभी दिया है, लेकिन आप से क्या छिपा है। उस की उमर न होगी तो बीस साल की होगी ही। रानी से सिर्फ एक वर्ष छोटी है। परीक्षा को छोड़िए। परीक्षा तो अगर आप ने न कहा होता तो हम रानी को न दिलवाते। आप जानते हैं उसे कितने साल हो गये हैं मैट्रिक किये हुए ? पूरे पाँच साल ! आप से क्या छिपा है ?"

एक दिन मैं ने कह दिया "खन्ना साहब शादी भी हो जायेगी, पहले बी० ए० तो कर लेने दीजिए उसे।" वह बोले, "ना भाई ना, बी० ए० से क्या फ़ायदा ? हम तो एफ़० ए० करवा कर ही पछता रहे रहे हैं। सोचिए न नरेन्द्र साहब ! जो चार पैसे हैं, वे एफ़० ए०, बी० ए०

में लगा दें तो विवाह किस से करेंगे ? आखिर उस के लिए भी तो पैसा चाहिए।" मैं ने बात बदलने के लिए कह दिया, "कोई और खबर सुनाइए।"

"आप को और खबरों की पड़ी है नरेन्द्र साहब ! और इधर एक-एक दिन गुज़ारना पहाड़ हो गया है। आप की चर्ची तो घुलती जा रही हैं, जैसे गर्मियों में बर्फ़। आप समझते नहीं नरेन्द्र साहब !"

तो इसी तरह के फ़िकरे सुनते-सुनते मेरे कान पकने लगे। सामने जो बात होती वह भी मेरे धैर्य की कम कड़ी आजमायश नहीं थी, उस के साथ उन के अपने कमरे में जो फुसफुस सुबह-शाम लगी रहती उस की भनक भी मेरे कान में पड़ती और आखिरकार एक दिन झुँझला कर मैं ने वह बात कह दी जो पिछले कई दिनों से मेरे होठों तक आ कर लौट जाया करती थी।

रविवार का दिन था और मिसेज़ रामदास शायद अपना आखिरी दाँत निकलवाने अस्पताल गयी हुई थीं। रानी को साथ ले गयी थीं, घर में सिर्फ़ मुन्नू, थानेदार और शीला थे। थानेदार ट्रंकों पर बैठे ढोल बजा रहे थे और शीला कदाचित उन के पास बैठी सब्ज़ी काट रही थी। मुन्नी और देशी सुबह से ही अपनी मौसी के घर गयी थीं और बाबू रामदास मेरे पास बैठे हुए कह रहे थे "अब आप ही बताइए नरेन्द्र साहब ! रानी में किस बात की कमी है ? पढ़ी-लिखी है, सीना-पिरोना उसे आता है, घर का काम-काज उस से बेहतर कोई क्या करेगा ? आप ने तो सुना ही होगा मीरा के भजन कितने अच्छे गाती है ! रूप-रंग भी किसी से बुरा नहीं। क्या हुआ अगर कद इंच दो इंच छोटा है तो....।"

उन की इस आखिरी बात से मैं सहमत नहीं। क्योंकि यद्यपि इस सारे अर्से में मैं ने स्वयं रानी से न कभी पानी का गिलास माँग कर

पिया ही है और न किसी के सामने आँख उठा कर उस की तरफ देखा ही है, लेकिन इतना ज़रूर जानता हूँ कि उस का क़द बिलकुल उचित ऊँचाई का है। अगर लम्बी नहीं तो छोटी कदापि नहीं।

"सब कुछ है नरेन्द्र साहब ! लेकिन पैसा नहीं तो कुछ भी नहीं। सोचता हूँ एक के लिए लड़का ढूँढ़ने में इतनी कठिनाई हो रही है तो औरों का क्या बनेगा ? हमारी तो मट्टी पलीद हो गयी नरेन्द्र साहब !" मैं ने अपने-आप को रोकते हुए कहा चिन्ता मत कीजिए सब ठीक हो जायेगा।

"और एक ये हरामज़ादे रिश्तेदार हैं, जो मुँह में आता है बके चले जाते हैं ! हम कहते हैं कि अगर अपने घर बैठे बकवास करते रहें तो भी हमें कोई परवाह नहीं, लेकिन इधर कुछ दिनों से उन्होंने क्या काम किया है कि हमदर्दी जताने के लिये चले आते हैं। कोई कहता है फलाँ का लड़का है ना, उस की पहली बीवी को मरे दस साल हो चुके हैं, कहो तो उस से ही बात की जा सकती है। कोई कहता है—हमारी जान-पहचान में एक लड़का है तो, लेकिन उस की एक आँख में थोड़ी-सी खराबी है। आप हैरान होंगे नरेन्द्र साहब ! एक ने तो हद कर दी—अगले दिन मैं घर नहीं था, एक साहब आये और जाते वक़्त रानी की माँ से कह गये कि अगर स्वीकार हो तो उस अनन्तराम से बातचीत की जा सकती है। और जानते हो नरेन्द्र साहब ! यह अनन्तराम कौन है ? हमारी जाति का एक कुबड़ा साहूकार है, कुबड़ा....।"

अब मुझ से न रहा गया। मैं ने अचानक उन की बात काटते हुए धीरे से कहा, "एक बात कहूँ आप से।"

बाबू रामदास गुस्से से काँप रहे थे, कुछ बोले नहीं, कदाचित् उन्होंने सुना ही नहीं।

"सुनिये आप रानी का विवाह मुझ से क्यों नहीं कर देते ?"

बाबू रामदास खन्ना को तो एक साथ कई साँप सूँघ गये। उन की आँखें यों खुल गयीं जैसे अब कभी बन्द न होंगी। उन के होंट फड़फड़ाने लगे। उन के हाथ यों काँपने लगे जैसे रा' शे के रोगी हों। मैं डर गया लेकिन पूर्व इस के कि मैं कुछ और कहता वह एक झटके से उठे और अपने कमरे में चले गये।

इस बात को हुए लगभग अब दो सप्ताह हो गये हैं। इस बीच में एक बार भी बाबू रामदास मेरे कमरे में नहीं आये और न ही उन्होंने मुझ से कोई बात की है। यदि कभी अनायास घर में या दफ़्तर में टक्कर हो जाती है तो वह दृष्टि नीची कर लेते हैं। दो रविवार बीत चुके हैं, चची ने मुझे खाना खाने के लिए नहीं कहा। मुन्नू, थानेदार के ढोल बजाने की आवाज़ अब भी मेरे कमरे में आती है। दो दिन हुए कदाचित् वह फिर गिर पड़े थे, बहुत देर तक रोते रहे, लेकिन मैं उन्हें चुप कराने के लिए नहीं जा सका।

कुछ नहीं कह सकता कि बात का अन्त किस तरह होगा, क्योंकि शुरू में तो दो-तीन दिन ऐसा लगा था जैसे मुझ से कोई ऐसी भूल हो गयी हो, जिस का प्रायश्चित असम्भव हो। जब भी अपने कमरे में होता यही सुनता—

"आखिर इसे सूझा क्या ?"

"हिम्मत कैसे हुई।"

"मैं न कहती थी जो देखने में भद्र दिखते हैं वे...."

"पूछो इस से, न हमारी जात मिलती है न गोत्र, न हम तेरे घर वालों को जानते हैं न...."

इस के बाद तीन चार दिनों के लिए मुझे ऐसे लगा जैसे मेरे

पड़ोसी इस बात को बिल्कुल भूल-से गये हों। दरवाज़े के साथ कान लगा कर भी सुनता तो कुछ सुनायी न देता।

इधर तीन-चार दिनों से फिर कुछ सरगोशियाँ होने लगी हैं। शाम को जब बच्चे रसोई आदि का सामान सम्हाल रहे होते हैं तो मुझे बाबू रामदास और 'पीली-कबूतरी' अपने कमरे में बैठे कुछ इस प्रकार की बात करते सुनायी देते हैं :

"एक बात कहूँ अगर जात का झमेला न होता तो लड़का बुरा नहीं था।"

"ऐसा लड़का तो भागवानों को मिलेगा।"

"बी० ए० पास है, नौकर है, एम० ए० की तैयारी कर रहा है।"

"और फिर हमारी हालत से पूरी तरह परिचित है।"

जब से बात ने यह रुख लिया है मेरी परेशानी कम हो गयी है और जहाँ तक मेरी धारणा है बाबू रामदास की भी एक परेशानी कुछ दिनों के अन्दर-ही-अन्दर दूर हो जायगी।

उड़ान

और एक दिन वह सब काम धन्धे छोड़ कर घर से निकल पड़ीं। कोई निश्चित प्रोग्राम नहीं था, कोई सम्बन्धी बीमार नहीं था, किसी का लड़का पास नहीं हुआ था, किसी परिचित का देहान्त नहीं हुआ था, किसी की लड़की की सगाई नहीं हुई थी, कहीं कोई सन्त महात्मा नहीं आया था, कोई त्योहार नहीं था—कोई बहाना नहीं था।

वास्तव में हुआ यह कि बरतन माँजते-माँजते अचानक जाने कहाँ से और कैसे शीला के मन में एक अनजानी तरंग सी उठी और हाथ में पकड़े हुए बरतन को पटक कर हाथ धोये बिना वह जैसी की तैसी कमरे से बाहर आयी और पुकारने लगी—"रानी ओ रानी........।" रानी का कमरा अहाते की दूसरी छत पर था। आवाज़ देते-देते शीला की दृष्टि शून्य को चीर कर आकाश पर छाये हुए बादलों से टकरायी और पानी का एक कतरा उस की दायीं आँख में आन गिरा। शीला ने एकदम आँख मींच ली और फिर ज़ोर से आवाज़ देने लगी—"रानी ओ रानी।"

और जब रानी ने जंगले से नीचे झाँकते हुए पूछा, "क्यों री,

क्या हुआ जो मुँह अँधेरे बाँगें दे रही हो।" तो शीला जवाब देने की बजाय खिलखिला कर हँसने लगी और रानी सवाल दोहराने के बदले, धम-धम करती नीचे आँगन में आ गयी और आते ही शीला की चुटिया पकड़ कर खींचने लगी। शीला ने हँसते हुए धमकी दी, "छोड़ दो नहीं तो मुँह काला कर दूँगी।" रानी ने हँस कर जवाब दिया "किस का........अपना।" और फिर दोनों हँसने लगीं और हँसते-हँसते ही शीला ने रानी के कान में कुछ कहा जिसे सुनते ही रानी ताली पीट कर चिल्लाने लगी—"वन्ती........ओ वीराँ........ओ वन्ती....।"

वन्ती और वीराँ उसी मकान की निचली मँज़िल के दो कमरों में रहती थीं और सब शोर सुन चुकी थीं। वन्ती अपने कमरे के एक कोने में नहा रही थी और वीराँ पिछले पहर के लिए थोड़ा सा आटा गूँध रही थी। रानी की आवाज़ सुनते ही वन्ती ने तुरन्त एक-दो गिलास पानी के इधर-उधर फेंके और एक मैला दुपट्टा बदन पर लपेट कर कमरे से बाहर निकल आयी। वीराँ ने आटा अध-साना छोड़ दिया था और पहले से ही शीला और रानी के साथ खड़ी न जाने किस बात पर हँस रही थी। वन्ती को देखते ही तीनों बिलकुल बच्चों की तरह चिल्लाने लगीं। "वन्ती नंगी होय........वन्ती नंगी........।" वन्ती खिसिया कर अपने कमरे में लौट गयी और जल्दी-जल्दी पेटीकोट और कुर्ती पहन कर कुर्ती के बटन बन्द करती-करती फिर बाहर दौड़ आयी। रानी ने आगे बढ़ कर कहा—"अरी दौड़ो नहीं, तुम्हारे हिस्से का तुम्हें मिल जायेगा।" वन्ती ने ज़रा आश्चर्य से पूछा—"क्या?" तो तीनों ने एक स्वर में कहा, "प्रसाद" और फिर चारों खिलखिला कर हँस पड़ीं।

उन की इस खिलखिलाहट से अहाते का घुटा हुआ वातावरण मानो चिढ़ सा गया और इस चिड़चिड़ेपन का स्पष्ट प्रमाण था अहाते

की मालकिन का कुपित चेहरा जो अपने पोर्शन के सामने वाली गली में खड़ी इन गँवार स्त्रियों के गँवारपन पर दाँत पीस रही थी, लेकिन जब इन चारों ने आपस में कुछ खुसर-फुसर करने के पश्चात् अपनी छोटी सी कान्फ्रेन्स का अन्त एक चीखते हुए ठहाके पर किया तो अहाते का वातावरण बदल सा गया। यद्यपि उस की मालकिन का पारा कुछ दर्जे और ऊपर चढ़ गया।

हँसती-चीखती, बल खाती चारों अपने-अपने कमरे में दौड़ गयीं। शीला ने राख भरे हाथ जल्दी से धोये। बरतनों का ढेर जहाँ का तहाँ पड़ा रहा और वह अपनी फूलों वाली शलवार को ठीक करने लगी। रानी ने झाड़ू उठा कर एक कोने में फेंक दिया। और पानी भरी बाल्टी फर्श पर उँडेल कर उसे एक ओर खिसका दिया और हाथ पेटीकोट से पोंछ कर आँखों में सुरमा डालने लगी। वन्ती पहले से ही सब काम समाप्त कर चुकी थी, केवल आग बुझानी बाकी थी। उस ने खड़े-खड़े ही दो-तीन गिलास पानी चूल्हे में फेंक दिया और एक क्षण के लिए सोचा कि सारा चूल्हा गीला हो गया और फिर नये दुपट्टे में सिलवटें डालने लगी। वीराँ ने आटे की परात को एक कोने में धकेल दिया, उस के कमरे में चप्पे-चप्पे पर जूठे बरतन पड़े हुए थे, क्योंकि उस के बच्चे अभी-अभी खा-पी कर बाहर निकले थे। उस ने एक-दो गिलास उठा कर ठिकाने लगाये फिर हाथ-मुँह धोनेलगी।

कुछ ही देर में चारों सहेलियाँ अपने-अपने कमरे को ताला लगा कर अहाते से बाहर निकल गयीं और अहाते की क्रोधित मालकिन आश्चर्य से उँगली दाँतों में दबाये देखती की देखती रह गयी। उन्होंने जाती बार आँख उठा कर उस की ओर देखा तक न था, 'नीच घराने की' अहाते की मालकिन बड़बड़ायी और उसी समय उस के पति

ने अन्दर से आवाज़ दी। "अरी कहाँ चली गयी तू नीच घराने की, यह क्या कर दिया है तू ने ?" और वह अन्दर जा कर पति से झगड़ने लगी।

इधर वे चारों सड़क पर एक दूसरे के पीछे ऐसे भाग रही थीं जैसे प्राइमरी स्कूल की लड़कियाँ। रानी ने तो हद ही कर दी। दुपट्टा उस ने कमर पर बाँध लिया और चोटी को सर पर पगड़ी की भाँति लपेट कर यों चलने लगी जैसे रानी खाँ की छोटी साली वही हो। वह अब गली से गुज़र कर सड़क पर पहुँच चुकी थी। शीला कह रही थी रुक जाओ रानी ठहरो........इधर कहाँ चल पड़ी हो........ इधर तो कुछ भी नहीं........जंगल में जाओगी........। वह इतने ज़ोर से बोल रही थी कि नवाबगंज रोड पर जाने वाले कुछ विद्यार्थी मुड़-मुड़ कर देख रहे थे। शीला के कई बार चिल्लाने पर आखिर रानी रुकी और कुछ सलाह के बाद उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें सब्ज़ी मंडी से ट्राम पकड़नी चाहिये और जब वन्ती ने पूछा— "जाओगी कहाँ ?" तो तीनों ने हँस कर जवाब दिया। "जहाँ तू ले जाये।" इस पर वन्ती भी हँस पड़ी और वह सब्ज़ी मंडी की तरफ चल पड़ी।

एक ट्राम खड़ी थी। वे दौड़ कर उस में बैठ गईं और जब कंडक्टर ने शीला से पूछा—"कहाँ जाओगी जी ?" तो शीला ने हँस कर जवाब दिया, "उस से पूछो।" कंडक्टर इस अकारण हँसी पर खीझ सा गया और उस ने तुनक कर कहा, "किस से पूँछू।" शीला ने फिर हँस कर कहा—"नाराज़ क्यों होते हो, उस से.......रानी से पूछो।"

"मुझे सपना आयेगा कि रानी कौन है" कंडक्टर ने बिगड़ कर कहा।

"मैं हूँ रानी !" रानी ने चलती ट्राम में उठ कर आगे बढ़ते हुए, कहा और दूसरे ही क्षण में लड़खड़ा कर एक वृद्ध की गोद में जा गिरी।

शीला, वन्ती और वीराँ खिलखिला कर हँस उठीं और रानी उस वृद्ध की गोद में से उठती हुई बोली, "हँसती क्यों हो, अपने पिता के समान है" इस पर ट्राम में बैठे सभी लोग हँस पड़े और वह वृद्ध बगलें झाँकने लगा। रानी उठ कर गिरती-पड़ती फिर अपनी सीट पर बैठ चुकी थी।

कुतुब रोड के अड्डे पर जब वह ट्राम से उतर गयीं तो कंडक्टर ने न जाने किसे सम्बोधित करते हुए कहा, "अजीब वाहियात औरतें थीं" और ट्राम में बैठे एक आदमी ने अपनी पत्नी से कहा, "लाज-शर्म तो रही नहीं" और वह वृद्ध बगल में बैठे एक युवक से कह रहा था, "साली क्या धम्म से आकर गोद में गिर पड़ी" और युवक यह समझने की कोशिश कर रहा था कि बूढ़ा उस औरत की हरकत की बुराई कर रहा है या वैसे ही चटखारा ले रहा है।

ट्राम से उतरते ही उन्होंने फिर सोचने की आवश्यकता समझी कि वे कहाँ जायँ। जब रानी ने अपने मुँह पर अँगुली रखते हुए कहा "हाय, हम कहाँ आ गयीं" तो शीला ने भोलेपन से जवाब दिया "अपनी ससुराल" और इस पर वह सब इस ज़ोर से हँसीं कि आस-पास के खड़े सभी लोग उन की ओर देखने लगे। हँसी के मारे वे दुहरी-तिहरी हुई जा रही थीं और यह भी भूल गयी थीं कि दोनों दिशाओं से एक-एक कार केवल उन्हीं के कारण हार्न पर हार्न बजा रही थी। और जब एक कार ने पीछे से रानी की टाँगों पर हल्का सा ठहोका दिया तो उस की हँसी चीख़ में बदल गयी और उस ने मुड़ कर कार वाले को पाँच-छः घरेलू गालियों से विदा किया।

जब वह सड़क के किनारे लग गयीं तो शीला (जिस की तरंग उन्हें घर से निकाल लायी थी) को जाने क्या सूझी, कहने लगी कनाट प्लेस चलोगी" । नाम तो सब ने सुन रखा था । वन्ती का घर वाला दफ़्तर से लौटते समय हर पहली तारीख़ को कनाट प्लेस से ही फूलों का एक हार उस के लिए ले आया करता था । वीराँ का रामदयाल भी अपने काम-काज के सम्बन्ध में कनाट प्लेस जाया करता था, जहाँ उस के सस्ते बिस्कुटों के पक्के ग्राहक थे । रानी तो स्वयं भी दो बार कनाट प्लेस हो आयी थी— एक बार जब उस के अनुरोध पर उस का पति आज़ादी का जलूस दिखाने ले गया और एक बार वह अकेली घूमती-घामती उधर जा निकली थी । शीला का सुझाव हाथों-हाथ लिया गया और वे एक ताँगे में सवार हो गयीं ।

घोड़ा पहले ही काफ़ी तेज़ था, मगर रानी ने ज़रा नखरे के साथ ताँगे वाले पर चोट करते हुए कहा "लैन, इसी तरह टिचकुँ-टिचकुँ चलेगा क्या ?" तो ताँगे वाले ने घोड़े की पिछली टाँगों में छड़ी के साथ कुछ इस शरारत से खुजली की कि घोड़ा हवा से बातें करने लगा । तड़ाख-तड़ाख करने लगा । तड़ाख, तड़ाख घोड़े के पाँव पक्की सड़क पर पड़ते और ताँगे वाला कभी रानी की ओर और कभी शीला की ओर जो उस के बराबर अगली सीट पर बैठी हुई थीं ऐसे देखता जैसे इनाम की माँग कर रहा हो परन्तु रानी और शीला घोड़े से भी अधिक तेज़ दौड़ रही थीं । रानी का दुपट्टा सिर पर तो पहले ही नहीं था, अब उस के बदन के किसी भी हिस्से पर नहीं था । नीचे गिर गया था—उसके पाँवों में । शीला के बाल उस की चोटी से भाग-भाग कर इधर-उधर दौड़ रहे थे । पीछे बैठी वन्ती और वीराँ बच्चों की तरह सीट पर घुटने टेक कर आगे की ओर देख रही थीं ।

रानी कह रही थी, "बल्ले ओ बल्ले !"

शीला कह रही थी, "हाय राम इतना तेज़ !"

ताँगे वाला कह रहा था, "कहो तो और तेज़ !"

वन्ती और वीराँ पीछे बैठी बोल उठीं, "हाँ भाई और तेज़ और तेज़ !"

ताँगे वाला पायदान पर खड़ा ललकार रहा था, "आ हा हा हा...."

और सड़क पर आने-जाने वाले लोग इस फर्राटे भरते हुए ताँगे पर दृष्टि तो न जमा सकते थे, पर टीका-टिप्पणी सब कर रहे थे। यदि वह किसी तरह सब एक स्थान पर इकट्ठे हो जाते तो सर्वसम्मति से निर्णय हो जाता कि ताँगे पर वेश्याएँ बैठी हैं, तेज़ कैसे न दौड़े।

लेकिन चूँकि ताँगा वेश्याओं को न बैठाये था, इसलिए कनाट प्लेस पहुँच कर ताँगे वाले को भी निराशा हुई। इनाम देने की बजाय रानी उस से कह रही थी "भाई हमारे पास तो साढ़े ग्यारह आने हैं, अब दो पैसे के लिए क्या जान लेगा।"

ताँगे वाले को शायद रानी का यह वाक्य सुन कर ठेस सी लगी। एकदम बोल उठा "रानी तू यह भी रख ले !"

उस का यह कहना था कि वन्ती, वीराँ और शीला खटाक से हँस उठी थीं। जैसे किसी ने तीन फ़व्वारे छोड़ दिये हों। रानी पहले एक क्षण के लिए भौंचकी सी रह गयी फिर जब बात समझ में आयी तो इतनी हँसी कि खड़ी न रह सकी और वहीं बैठ कर 'उई,' 'उई' करने लगी। ताँगे वाले ने अपने आप से कहा "पागल होंगी" और कदम-कदम घोड़े को चलाने लगा।

जब ज़रा दम में दम आया तो अपनी आँखों को पोंछते हुए रानी ने कहा, "मुए को मेरा नाम कैसे पता चल गया ?" वन्ती ने जवाब दिया, "भाई तुम्हें कौन नहीं जानता ?" और इस पर हँसी का दूसरा दौर शुरू होने वाला ही था कि उसी ताँगे वाले की आवाज़ फिर

आयी "क्यों जी कुतुब की सैर करवा लाऊँ ।"

ताँगे वाला कुछ दूर जा कर फिर मुड़ आया था ।

"कुतुब की सैर करवा अपनी माँ को, अपनी बहन को ।" रानी ने विशेष घरेलू औरत के स्वर में कहा और अपनी सहेलियों से बोली, "चलो री यह मुआ तो कुत्ते की तरह पीछे ही पड़ गया है ।" और वह ओडियन सिनेमा की ओर चल पड़ीं ।

रानी बोली "यह है कनाड प्लेटस ।"

वीराँ बोली "कनाड पलेटस नहीं, करनाट पलेस ।"

वन्ती ने कहा "क्या बकती हो, नाम है—कनास प्लेट ।"

शीला ने कहा, "नाम कुछ भी हो स्थान तो यही है न ।"

रानी बोली, "पूछ क्यों नहीं लेती किसी से ?"

"जाओ न अपने उस ताँगे वाले से....।"

तांगे वाले का नाम सुनते ही रानी एक मुस्कान को दबाते हुये बोली, "मुआ नाम तक जान गया ।"

वह ओडियन के सामने रुक कर दूर से तस्वीरें देखती रहीं और फिर झिझकते-झिझकते नज़दीक आयीं और फिर धीरे से सिनेमा के पोर्च में दाखिल हो गयीं । फिरती-फिरातीं पुरुषों के पेशाब-घर पर जा रुकीं । कुछ क्षण सोचती रहीं कि अन्दर क्या होगा और फिर रानी ने दरवाज़ा अन्दर की ओर धकेला और 'उइ माँ, कह कर बाहर की ओर भागने लगी । सब की सब भागती फिसलती बाहर आ गयीं और रानी से पूछने लगी कि, "हुआ क्या ।" पर रानी हँसती गयी, हँसती गयी और जब उन्होंने बहुत तंग किया तो बोली "एक आदमी........" और फिर हँसने लगी । "ताँगे वाला याद आ रहा है" वीराँ और वन्ती ने कहा । शीला ने बात बदलने के लिए कहा, "यहीं कहीं हनुमान जी का मन्दिर है कहो तो....।"

"राख डालो हनुमान जी के मन्दिर पर। सैर पर निकली हो कि पूजा को? वहाँ भी कोई मोटा-ताज़ा पुजारी बैठा घूर रहा होगा।"

"आप बीती सुना रही हो" शीला ने कहा और वह फिर हँसने लगीं।

और इसी तरह हँसते-हँसाते, फिरते-फिराते उन्होंने शाम कर दी। हँसते-हँसते उन के गले बैठ गये थे और वैसे भी उन्होंने बहुत कुछ अलम-ग़लम खा लिया था—गोल गप्पे, आलू की टिकिया, चाट के पत्ते, चना ज़ोर गर्म याने कनाट प्लेस के बड़े होटलों को छोड़ कर बाहर जो चीज़ें मिलती थीं, वे सब उन्होंने थोड़ी-थोड़ी चख ली थीं। कनाट-प्लेस के बरामदों में कितने ही चक्कर लगाये थे, कितनी ही दुकानों के सामने हक्की बक्की हो कर खड़ी हुई थीं। कितने ही लोगों को अपनी हँसी के कारण भ्रम में डाल चुकी थीं और अब उन की टाँगों में हल्का-हल्का दर्द होने लगा था। और उन के दिमागों को कोई जंज़ीर घर की ओर खींचने लगी थी।

"चलो न वहाँ क्या हरी-हरी घास है थोड़ी देर बैठ कर आराम कर लें।"

पर इस के जबाब में 'हाँ' या 'ना' की बजाय जब वीरां ने धीमें स्वर में कहा, "घर नहीं चलोगी?" तो घर का नाम जैसे घड़े पर रोड़े के समान लगा।

चारों के चेहरे एकदम उतर गये।

"घर जा कर क्या करोगी?" रानी ने हिम्मत से काम लेते हुए कहा। लेकिन उस के इस निर्बल से प्रतिवाद का यथार्थ के कड़ुवे बादलों पर कोई प्रभाव न पड़ा, जो शायद आसमान से छूट कर अब अब उन के दिमाग़ों पर छा रहे थे।

"घर में है क्या ?" रानी ने फिर कहा जैसे अपने आप को समझा रही हो।

"है खाक़ !" शीला ने जवाब दिया जैसे कह रही हो जानते-बूझते हुए पूछती हो !

"और वे चारों सहेलियाँ हरी-हरी घास पर बैठने की बजाय घर की ओर लौट पड़ीं।

"ताँगा कर लो, रानी ने कहा पर किसी को हँसी न आयी।"

"वन्ती और वीराँ को मानो साँप सूँघ गया है।" शीला ने कहा।

"सोच रही हूँ रात को सब्ज़ी क्या पकाऊँगी ?" वन्ती ने जवाब दिया।

इस का मज़ाक उड़ाने की बजाय रानी बोली "मेरे से सुबह की दाल ले लेना।"

और वे रास्ता पूछती-पाछती घर की छोटी-छोटी उलझनों को सुलझाती, घरेलू समस्याओं पर बहस करती, पड़ोसिनों की निन्दा करती एक दूसरे से ईर्ष्या करती, पाइयों आनों का हिसाब करती तेज़-तेज़ घर की ओर चलने लगीं।

जब वे गली के पास पहुँची तो अँधेरा काफ़ी गहरा हो चुका था।

एक बदबूदार गली

बेहतर होगा, अगर आप नाक पर रूमाल रख लें, क्योंकि गली अत्यन्त बदबूदार है। हो सकता है, रूमाल से भी कोई अन्तर न पड़े। कहते हैं, एक बार एक अमेरिकन मेम रास्ता भूल कर इस गली में आ घुसी थी और इत्तफ़ाक़ से उस के पास रूमाल नहीं था। बेचारी फ़ौरन बेहोश हो कर गिर पड़ी थी। लेकिन आप घबराइये नहीं, आप तो इसी देश के बाशिन्दे हैं ना। फिर भी एहतियातन नाक पर रूमाल रख ही लीजिए। आप मेरी चिन्ता न करें, मैं तो इसी गली में रहता हूँ, मुझ पर यह बदबू असर नहीं करेगी।

आप नाक सिकोड़े उधर क्या देख रहे हैं? गन्दगी के वे दो ढेर इस गली के गेट का काम देते हैं। उन्हें उठाया नहीं जाता, ताकि नावाक़िफ़ आदमी भूल कर भी इस गली में न घुसें। फिर वह अमेरिकन मेम इस गली में कैसे आ घुसी थी? जी, मैं कह नहीं सकता। हो सकता है, यह क़िस्सा ग़लत हो। मैं ने खुद किसी अखबार में पढ़ा था। जी हाँ, इस गली की चर्चा कई बार अखबारों में भी आ चुकी है।

बहरहाल, आप आगे चलिए। आप शायद यह सोच रहे हैं कि गली के मुँह पर लगे गन्दगी के इन ढेरों पर यह जानवर-से क्या मँडरा रहे हैं? क्षमा कीजिए, यह जानवर नहीं, इसी गली के कुछ बच्चे हैं, जो दिन-भर इन ढेरों को कुरेदते-उधेड़ते रहते हैं। कभी कोई गला-सड़ा केला या संतरा या और कोई चीज़ मिल जाय, तो उठा कर खा लेते हैं। आप ने देखा होगा, कभी-कभी लोगों के होंठों पर पीली-पीली या सफेद-सफेद फुंसियाँ निकल आती हैं, और उन पर हमेशा मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। आप मेरा मतलब समझ गये न? मुझे अफ़सोस है, आप का जी मितलाने लगा।

लेकिन आप तो मुड़-मुड़ कर उन्हीं बच्चों की तरफ़ देखते जा रहे हैं। उन्हें छोड़िए। उन्हें कुछ नहीं होगा। बुज़ुरगों का कहना है, बच्चों की देख-भाल भगवान स्वयं किया करते हैं। जी, मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूँ। अगर आप को विश्वास न हो, तो थोड़ी देर यहीं रुक जाते हैं। आप के देखते-ही-देखते इन बच्चों को इन्हीं ढेरों में से कुछ-न-कुछ मिल जायगा, जिसे वह भगवान की दी हुई नेमत समझ कर निगल जायेंगे। और उन्हें कुछ भी नहीं होगा।

आप फटी-फटी निगाहों से मेरी ओर क्यों देखने लगे? उधर देखिए, वह उन्हें जाने क्या नज़र आ गया। वह सब-के-सब उस पर झपट पड़े। लेकिन आप मेरी मानें, तो उधर से ध्यान हटा लें, नहीं आप को इन बच्चों में बीच-बचाव करना पड़ेगा। और मुझे डर है, कहीं आप अपने कपड़ों का सत्यानास न कर लें। जी, ठीक कह रहा हूँ। बच्चों का क्या है। दिन-भर लड़ते-भिड़ते हैं उसी वक़्त फिर एक हो जाते हैं। आप मेरे साथ आगे चलिए।

तो यह इस गली का पहला मकान है। आप चौंक क्यों पड़े? शायद आम ज़बान में इन काल-कोठरियों को मकान नहीं कहा

ज़ाता। लेकिन मैं अपनी सुविधा के लिए ही इन्हें मकान ही कहूँगा। इस गली के सभी मकान कुछ इसी बनावट के हैं। बुरे भी क्या हैं। सिर ही तो छिपाना है। पूर्वजों ने कहा है, अन्तिम समय कुछ साथ नहीं जाता, सिवाय नेक कामों के फिर मकान बड़ा हो या छोटा, नया हो या पुराना, हवादार हो या अँधेरा, उस से क्या अंतर पड़ता है। लेकिन क्षमा कीजिए, मैं यों ही बहक गया। मेरे मुँह से यह बड़े-बड़े वाक्य शोभा नहीं देते। यह काम तो पूर्वजों का ही है। ख़ैर, तो यह इस गली का पहला मकान है। इस में प्रकाशवती नाम की एक विधवा रहती है। लोग उसे पाशो कह कर बुलाते हैं। इस पाशो की दो नौजवान लड़कियाँ हैं, सत्या और पारो। वैसे इन लड़कियों की जवानी का सबूत इन की उमर के सिवा और कुछ नहीं, क्योंकि शक्ल से तो यों दिखायी देती हैं, जैसे यह दोनों भी अपनी माँ के साथ ही विधवा हो गयी थीं। कुछ लोगों का ख़्याल है कि अगर पाशो जीवित न होती तो इन की शादी अब तक कई बार हो चुकी होती। आशा है, आप मेरा मतलब समझ गये होंगे।

यह पाशो बहुत ही कड़े स्वभाव की स्त्री है। गली वाले इस से बहुत डरते हैं। कहते हैं, पाशो किसी के पीछे न पड़ जाय। आये दिन किसी-न-किसी से लड़ाई करती है। मोटी-मोटी गालियाँ देती है। बीच गली में खड़ी हो दुहथ्थड़ पीटने लगती है। अपने बाल नोच लेती है। फिर ढाड़ें मार-मार कर रोने लगती है। लोग कहते हैं, पाशो की बद्दुआ कभी खाली नहीं जाती, क्योंकि वह बहुत दुखी है। उसे विधवा हुए कई साल बीत गये हैं। उस का पति सब्ज़ी की फेरी लगाया करता था। और जब वह मरा तो पाशो के पास सिवाय कुछ दिन की बासी सब्ज़ी और इन दो लड़कियों के और कुछ भी नहीं था। बेचारी किसी-न-किसी तरह इन्हें पाल रही है। कई धन्धे करती

है, तब जा कर कहीं अपनी लड़कियों का पेट भर पाती है। इतनी मुद्दत गुज़ार दी, मगर क्या मजाल कि उस की लड़कियों ने किसी की तरफ़ आँख उठा कर भी देखा हो। गली वाले दिल-ही-दिल में पाशो की इस कड़ी निगरानी की बहुत इज़्ज़त करते हैं।

लेकिन यह सत्या और पारो न जाने क्यों अपनी माँ से लड़ती-झगड़ती रहती हैं। कई बार माँ-बेटियों में दंगा हो चुका है। जब वह छोटी थीं, तो पाशो उन्हें चोटी से पकड़ कर मार-पीट लिया करती थी। लेकिन अब वह लात का जवाब मुक्के से देती हैं। बात-बात पर आँखें दिखाती हैं। गाली का जवाब गाली से देती हैं। पाशो उन्हें घर से निकाल देने की धमकी देती रहती है और लड़कियाँ घर से निकल जाने की। लेकिन जब गुस्सा उतर जाता है, तो तीनों एक-दूसरे से लग कर ज़ोर-ज़ोर से रोती हैं। गली वाले दिल-ही-दिल में हैरान होते हैं कि इन का यह क्या दस्तूर है।

मैं देख रहा हूँ कि आप इस सारे किस्से में कोई दिलचस्पी नहीं ले रहे। और आप की नज़रें इस साथ वाले मकान के सामने पड़े इन कुचले हुए फूलों पर लगी हुई हैं। शायद आप हैरान हो रहे हैं कि इस बदबूदार गली में यह फूल कहाँ से आ गिरे? लेकिन अजीब बात है, इन फूलों से भी बदबू आ रही है! शायद इस गली में रहते-रहते मेरी नाक में कोई ख़ास नुक़्स पैदा हो गया है। इस मकान में भी एक विधवा रहती है। उस का असली नाम तो मुझे मालूम नहीं, गली वाले उसे चुड़ैल बुढ़िया कहते हैं। बुढ़िया दिन-भर ग़ायब रहती है। लेकिन शाम के समय जब घर लौटती है, तो उस के साथ हमेशा दो-एक औरतें होती हैं और उन के पीछे-पीछे सिर-मुँह लपेटे दो-एक आदमी। औरतों के हाथों में फूलों के गजरे होते हैं। जिन से आ रही खुशबू आदमियों के मुँह से आ रही बू से मिल कर एक ऐसी बदबू

पैदा करती है, जो रात-भर गली के इस हिस्से में रची रहती है। दूसरे दिन फूलों के यही गजरे इस मकान के बाहर पड़े दिखायी देते हैं और दिन-भर लोगों के पाँव से उलझते रहते हैं।

गली वाले कहते हैं, बुढ़िया का मकान बदमाशी का अड्डा है। इस अड्डे का ज़िक्र शायद आप ने अखबारों में भी पढ़ा होगा। लोग कई बार थाने में जा-जा कर इस बात की शिकायत भी कर चुके हैं। लेकिन जब से गली वालों ने एक रोज़ सुबह-सबेरे एक हेड कान्सटेबल को इस मकान के सामने औंधे मुँह पड़ा देखा है, यह शिकायतें बन्द-सी हो गयी हैं। लोगों का ख़्याल है, बुढ़िया की पुलिस में बहुत चलती है।

इस बुढ़िया की शक्ल बहुत मनहूस है। हर समय मुँह में पान दबाये रहती है। इस के माथे पर हर वक़्त तिलक लगा रहता है। एक रोज़ उस के घर का दरवाज़ा खुला पा कर मैं ने उस की कोठरी में झाँक लिया था। सामने की दीवार पर पलंग के ऊपर कृष्ण भगवान की मूर्ति टँगी हुई थी और उस के साथ एक तस्वीर किसी आदमी की भी थी, जिसे मैं ठीक तरह से देख नहीं पाया। मेरा खयाल है, वह तस्वीर बुढ़िया के घर वाले की होगी।

लोग कहते हैं, यह बुढ़िया दूर के रिश्ते से अपनी पड़ोसन पाशो की बहन लगती है, सम्भव है। लेकिन इन दोनों में घमासान युद्ध होता है। और आस-पास के लोग इस लड़ाई में हरगिज़ शरीक़ नहीं होते, क्योंकि बुढ़िया की एक अजीब आदत यह है कि लड़ते-लड़ते अपनी धोती ऊपर उठा देती है और अपनी रानों पर हाथ मार-मार कर पाशो की लड़कियों, सत्या और पारो, को गन्दी-गन्दी गालियाँ देने लगती है। कहती है इसी को सात कपड़ों में छिपाये फिरती हो! अगर तुम्हें किसी दिन कुत्तों से न फड़वाया, तो मेरा नाम बदल देना।

और पाशो बेचारी अपनी लड़कियों को घसीट कर अन्दर ले जाती है और ऊँची आवाज़ में ईश्वर से बुढ़िया की मौत के लिए दुआएँ माँगने लगती है।

लोग-बाग इस बुढ़िया के हाथों बहुत लाचार हैं, क्योंकि बुढ़िया ने गली-भर में खुलेआम कह रखा है कि जिस किसी को पैसे की तंगी हो, वह रात को थोड़ी देर के लिए अपनी बहू या बेटी को उस के मकान में भेज दे। लोगों का ख़याल है, गली के कई बेगैरत मर्द-औरतें खुफ़िया तौर पर बुढ़िया के इस न्योते का फ़ायदा उठाते रहते हैं।

विशेष रूप से इस सामने वाले मकान में रहने वाली फूलो तो इस सिलसिले में बहुत बदनाम हो चुकी है। लोगों ने कई बार अपनी आँखों से फूलो को बुढ़िया के मकान के अन्दर दाखिल होते देखा है। फूलो का अपना पति भी कई बार अपनी बीवी की बेहयाई की शिकायत करते सुना गया है, लेकिन बेचारे का कुछ बस नहीं चलता, क्योंकि वह स्वयं एक अरसे से बीमार पड़ा है। वह कहता है, अगर वह बीमार न होता तो फूलो की क्या मजाल थी कि उस के जीते-जी उस की इज्ज़त यों मिट्टी में मिला देती। बीमारी से पहले वह साइकिल-रिक्शा चलाया करता था। मकान के सामने टूटी-सी रिक्शा जो पड़ी है, उसी की है। वह तो अब भी कहता है, 'एक बार अच्छा हो जाऊँ, इस बेशरम को घर से न निकाल दूँ तो मेरा नाम रामदयाल नहीं।' गुस्से में आदमी जो कह जाय, कम है। लेकिन आप जानते हैं, बिना दवा-दारू के कोई आज तक अच्छा हुआ नहीं। बेचारा रामदयाल महज़ अपने दिल को तसल्ली देने के लिए अच्छा हो जाने और उस के बाद फूलो को घर से निकाल देने के स्वप्न लेता रहता है।

इधर कुछ दिनों से फूलो का पेट बढ़ने लगा है। सब जानते हैं कि

यह बच्चा रामदयाल का नहीं, हो ही नहीं सकता। रामदयाल खुद डंके की चोट कहता है कि मैं इस हरामी का बाप नहीं। लेकिन आप सुन कर हैरान होंगे कि फूलो उसे जूता दिखा-दिखा कर कहती है, ख़बरदार, जो इसे हरामी कहा ! तुम इस के बाप नहीं तो न सही, मैं तो इस की माँ हूँ। इस पर दयाल के दिल पर जो गुज़रती है, उस का अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं। वैसे कुछ दिन हुए, रामदयाल ने अपनी चारपाई की रस्सी से अपना गला घोंट लेने की कोशिश भी की थी। लेकिन इत्तफ़ाक़ से फूलो उस समय घर पर ही थी। उस ने देख लिया और चिल्ला-चिल्ला कर सारी गली को इकट्ठा कर लिया और रामदयाल के गले में बँधी रस्सी को ढीला करने के बजाय यही दोहराती रही, अगर मैं देख न लेती तो दुनिया वाले मेरे मुँह पर ही कालिख मलते ! इतने में इकट्ठी हुई भीड़ में से किसी ने आगे बढ़ कर रामदयाल के गले में पड़े फन्दे को खोल दिया और सम्हलते ही रामदयाल ने तड़प कर कहा, "लोगो ! या तो मुझे मार दो या इसे कहीं और ले जाओ !"

लेकिन भीड़ में कई समझदार लोग भी थे। उन्होंने रामदयाल को ढाढ़स देते हुए कहा—"बेवकूफ़ क्यों बनते हो, अगर उसे ज्यादा तंग करोगे तो कहीं भाग जायगी और दो वक़्त की रोटी से भी जाओगे। तुम अपने काम से काम रखो। तुम्हें क्या, लोग तो उसे ही बुरा कहेंगे, तुम्हें क्या ?"

और इस पर रामदयाल न जाने क्यों फूट-फूट कर रो पड़ा।

आप सोच रहे होंगे, मैं भी कितना लीचड़ हूँ, इतनी गन्दी बात का ज़िक्र इतने विस्तार से कह रहा हूँ ! लेकिन क्या करूँ। इतना अरसा हो गया मुझे इस गली में रहते-रहते। आज पहली बार खुल कर बातें करने का अवसर मिला है। दिल कड़ा कर के सुन लीजिये।

मेरा बोझ हल्का हो जायगा और शायद मेरी रग-रग में बसी हुई बदबू भी कुछ कम हो जाय।

आप शायद कुछ ऊब-से गये दिखाई देते हैं। तो चलिए, ज़रा तेज़-तेज़ चल लेते हैं। वैसे भी गली के इस हिस्से में इतना धुआँ है कि यहाँ ठहरना सम्भव नहीं। आप का दम घुटने लगेगा। दरअसल इन मकानों में कुम्हारों के कुछ घर हैं। ये लोग अपने-अपने घरों में ही छोटी-छोटी भट्टियाँ लगाये हुए हैं और यह धुआँ इन्हीं भट्टियों का है। यह लोग छोटे-छोटे प्याले, कुल्हड़ और हुक्के की चिलमें बनाते-पकाते रहते हैं। वह गधे इन्हीं के हैं। वैसे यह खुद भी हर समय मिट्टी और कालिख से यों लथ पथ रहते हैं कि बिल्कुल गधे-से नज़र आते हैं।

चलते-चलते सामने बैठे उस मोची को एक नज़र देख लीजिए। इतना अजीब मोची शायद ही आप ने कहीं देखा हो। बेहद बूढ़ा है। कितने ही वर्षों से इसी स्थान पर बैठा हुआ है। हर समय काम पर झुका रहता है, जिस की वजह से इस की पीठ में बिलकुल ऊँट की तरह का एक कोहान-सा उभर आया है। कभी-कभी कुछ शरारती बच्चे इसे काम में मग्न देख इस की पीठ पर मुक्का मार जाते हैं। गर्मियों में जब वह नंगे बदन बैठा होता है तो उस की पीठ में उभरी हुई हड्डी को देख कर बहुत डर लगने लगता है। न जाने अभी तक इसकी रीढ़ की हड्डी ने उस की खाल को चीर क्यों नहीं डाला।

गली वाले कहते हैं, यह मोची पागल है। हो सकता है, यह बात ठीक ही हो, क्यों कि प्रायः उस के पास मरम्मत के लिए जूता वगैरा कम आता है। लेकिन वह फिर भी हर समय कुछ न कुछ करता ही रहता है। कभी-कभी वह अपने आस-पास पड़े फटे-पुराने जूतों को उधेड़-उधेड़ कर उन्हें यों चबाने लगता है, जैसे रोटी खा रहा हो और फिर जैसे अचानक उसे इस बात का अहसास हो जाता है कि वह

रोटी के बजाय सूखा, खुरदरा चमड़ा चबा रहा है और वह मुँह में पड़े टुकड़े निकाल उन पर बेतहाशा थूकने लगता है और उन्हें ऊपर आसमान की तरफ़ फेंक-फेंक कर कहता रहता है, 'तू खा ! तू खा !'....

अब अगर आप चाहें, तो थोड़ी देर यहाँ रुका जा सकता है। धुआँ तो यहाँ भी है, लेकिन ज़रा कम है। अपना मुँह ज़रा इधर फेर लीजिए। उधर दो औरतें लघुशंका निवारण कर रही हैं। जी हाँ, बेशरम औरतें हैं, लेकिन क्या करें ? अगर गली में न करें, तो चौके में करें ? जी, इस गली के किसी मकान में लघु हो या दीर्घ—किसी शंका के लिए कोई अलग स्थान नहीं। कम-से-कम नज़र तो यों ही आता है, क्योंकि दोनों काम गली के किसी भी नुक्कड़ में होते दिखाई देते हैं।

सामने के मकान में एक बूढ़ा-बुढ़िया रहते हैं। बूढ़ा सत्तर के करीब होगा और बुढ़िया पचहत्तर की। बूढ़े की आँखों की ज्योति क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुकी है और बुढ़िया इतना ऊँचा सुनती है कि कहा जा सकता है कि कुछ भी नहीं सुनती। बूढ़ा लाठी टेक कर रास्ता टटोल-टटोल कर कुछ क़दम चल लेता है। बुढ़िया किसी तरह भी चल नहीं पाती। कुछ दिन पहले तक वह हाथों के बल थोड़ा-बहुत घिसट लिया करती थी। बूढ़ा अपनी कोठरी के दरवाज़े पर बैठा मूँग-फली बेचता है। आप हैरान होंगे कि क़रीब-क़रीब अन्धा होने के बावजूद वह हाथों से टटोल कर देख लेता है कि सिक्का खोटा है या खरा। गोइस की नौबत कम ही आती है। पैसे-दो-पैसे की मूँगफली में कौन-सा बड़ा धोखा हो सकता है। फिर भी वह स्वभावतः हर सिक्के को ठोंक-बजा कर लेता है। बुढ़िया दिन-भर साथ पड़ी चारपाई पर लेटी-लेटी कराहती रहती है। शाम को गली का कोई आदमी उन्हें बाज़ार से दो रोटियाँ और दाल ला देता है। बूढ़ा रोटियों को तोड़-मरोड़ कर दाल

में मिला देता है। कुछ अपने मुँह में डाल लेता है और कुछ बुढ़िया के मुँह में ठूँसता रहता है। खाते-खाते बुढ़िया बच्चों की तरह रोती रहती है और बूढ़ा गालियाँ दे-दे कर उसे रोने से मना करता और कहता रहता है, शुक्र करो और भगवान का नाम लो। लेकिन बुढ़िया भगवान का नाम लेने के बजाय गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर अपने बेटे रामलाल को बुलाती है। और फ़रियाद करती है कि जाते समय वह उसे भी साथ क्यों नहीं ले गया।

कभी-कभी बूढ़ा तैश में आ जाता है और रोटी के कटोरे को गली के बीच पटक देता है और गली में घूम रहा कोई कुत्ता उसे चाटने लगता है।

उफ़! आप का जी फिर मतलाने लगा। चलिए, आगे चलते हैं। अब तो वह औरतें भी उठ गयी हैं।

इस मकान में एक ताँगा वाला रहता है, बसाती। बड़ा जाबर आदमी है। सारी गली में इस की धाक है। डील-डौल बहुत प्रभावशाली है और आवाज़ में एक भयानक कड़क। जब कभी अपनी बीवी धनिया को पीटता है तो लोगों की अक्ल दंग रह जाती है। हर बार यों लगता कि जान ही से तो मार डालेगा। पीटता-पीटता बालों से घसीट कर गली में ला फेंकता है। ताबड़-तोड़ लातें जमाता है और जब वह बेहोश हो जाती है, तो दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लेता है और अन्दर से कहता है—'खबदार, जो अब वापस मेरे घर में आयी!'

लेकिन, साहब, क्या कहूँ। इस औरत की हड्डी कितनी सख़्त है कि इतनी मार खा चुकने के बाद भी उसे कुछ नहीं होता। रात-भर गली में पड़ी रहती है और सुबह जब बसाती ताँगा जोत कर बाहर निकल जाता है, तो उठ कर अन्दर चली जाती है और दिन-भर

मार-पीट का बदला अपने छोटे-छोटे बच्चों से लेती है।

जी हाँ, मैं ने एक बार इस बसाती को समझाने की कोशिश की थी। मैं ने कहा था, 'देखो, अगर किसी रोज़ मर गयी, तो इन बच्चों का क्या होगा? कैसे पालोगे इन्हें? छोटे-छोटे तो हैं?' बसाती वैसे बड़ा मिलनसार आदमी है। बोला, 'बाबूजी, क्या कहें आप से। यह तो मर ही जाय, तो अच्छा है।' मैं कुछ समझा नहीं। लेकिन बाद में पता चला कि वह बच्चे बसाती की पहली बीवी के हैं और बसाती धनिया को पीटता इसीलिए है कि वह इन बच्चों के साथ अच्छा सलूक नहीं करती।

फिर भी बसाती की क्रूरता का कारण पूरी तरह मेरी समझ में आया नहीं। कुछ लोग कहते हैं, उसे शक है कि धनिया कभी-कभी शाम को उस चुड़ैल बुढ़िया के मकान पर भी जाती है। मैं कह नहीं सकता, क्योंकि इस बात का समर्थन करने के लिए मैं बसाती से पूछने की हिम्मत नहीं रखता।

लगता यों है कि आप ने बसाती का किस्सा ध्यान से सुना नहीं। वरना आप ज़रूर कुछ-न-कुछ कहते। क्या कहा, अब आप वापस जाना चाहते हैं। ठहरिए, मेरे मकान में नहीं चलिएगा? वह सामने ही तो है।

अच्छा, न सही। लेकिन रुकिए तो। उस मकान में कुछ रोज़ हुए एक अजीब घटना घटी है। उसे तो सुन ही लीजिए। वहाँ दरअसल तीन परिवार रहते हैं। मकान ज़रा बड़ा है। जी हाँ, बाहर से तो कोई ख़ास बड़ा नज़र नहीं आता। लेकिन उस में चार कमरे हैं। तीन नीचे और एक ऊपर। ऊपर वाले कमरे में मैं रहता हूँ। जी हाँ, क्या करूँ, किसी और गली में पाँच रुपये माहवार पर जगह मिलनी मुश्किल है। मैं ने सोचा, मैं अकेला हूँ और फिर कमरा ज़रा गली

से हट कर है। ख़ैर, उसे छोड़िए। क्या करूँ, पढ़ाई का अपना खर्च तो है ही। मुझे बीस-पच्चीस घर भी तो भेजने पड़ते हैं। जी नहीं, मैं विवाहित नहीं, लेकिन माँ-बाप तो हैं।

ख़ैर, मेरी बात फ़िलहाल रहने ही दीजिए। हाँ, तो उस मकान में तीन परिवार रहते हैं। परिवार तो दरअसल एक ही हैं, लेकिन तीन हिस्सों में बँटा हुआ है। एक में एक पति-पत्नी और दो बच्चे हैं। इस औरत की दूसरी बहन और उस के बच्चे दूसरे कमरे में हैं। इस का पति, कुछ लोग कहते हैं, उसे छोड़ कर कहीं चला गया है। वर्षों से लापता है। न जाने है भी या नहीं और तीसरे में इन दोनों बहनों का बाप और उन की सौतेली माँ।

इन के दो बच्चे हैं। दोनों लड़कियाँ हैं। एक सात वर्ष की और दूसरी नौ वर्ष की। इन का एक जवान लड़का था, जिस ने आत्म-हत्या कर ली थी।

आप ज़रा जल्दी में हैं, नहीं तो मैं आप को खोल कर बतलाता कि इस घर में रहने वाले लोग क्या-क्या करते हैं, क्या खाते-पीते हैं, इत्यादि। मोटी-सी बात यह है कि यह तीनों परिवार भी इस गली के और परिवारों की ही तरह काफ़ी ग़रीब हैं।

हाँ, दोनों बहनें अपनी सौतेली माँ से तो लड़ती ही हैं, आपस में भी ख़ूब जी भर कर झगड़ती हैं। और इस घर के बच्चे, मैं ठीक नहीं जानता कौन किस का है, बेचारे इस दंगे-फ़साद की वजह से हर समय सहमे-सहमे रहते हैं। मेरा अनुमान है, इस गली में सब से अधिक दुखी यही बच्चे हैं। उन के चेहरों पर हर समय मृत्यु की परछाइयाँ मँडलाती नज़र आती हैं।

ख़ैर, मेरी बात का असली मतलब इन बहनों के बाप से है, जिस ने तीन ब्याह किये। दोनों बहनें उस की पहली पत्नी से हैं। दूसरी से

कोई बच्चा नहीं हुआ और तीसरी अभी तक है, जिस से उस की दो लड़कियाँ हैं और एक लड़का था, जो अब मर चुका है।

लड़के की मृत्यु मेरे यहाँ आने से पूर्व हो चुकी थी। परन्तु मैं ने सुना है कि इस लड़के की मृत्यु से बाप के दिल पर इतनी गहरी चोट लगी कि पहले उस की आँखें जाती रहीं, फिर कान बन्द हो गये और फिर एक दिन एकदम ज़बान भी बन्द हो गयी। कुछ महीने पहले जब मैं ने उसे देखा, तो वह बेचारा न देख सकता था, न सुन सकता था और न बोल सकता था। शायद यह भी कोई बीमारी ही थी।

परन्तु आश्चर्य की बात है कि उसे अचानक बहुत ज़्यादा भूख लगने लगी। उस की पत्नी, लक्ष्मी, सदा शिकायत करती रहती। पहले-पहल तो मुझे स्वयं विश्वास न आता था, परन्तु एक दिन मैं ने स्वयं अपने सामने उसे एक-के-बाद एक बीस रोटियाँ निगल जाते देखा। आहिस्ता-आहिस्ता उस की यह भूख गली भर में मशहूर हो गयी। सुबह-शाम इस घर के आँगन में तमाशा-सा लगा रहता। वह सहन में बैठा होता और लोग उस के सामने रोटियाँ फेंकते रहते और वह उठा-उठा कर उन्हें मुँह में डालता जाता और जब खा चुकता, तो हाथ बढ़ा-बढ़ा कर और आँ-आँ के साथ और रोटी के लिए माँग करने लगता।

लक्ष्मी कहती, 'बताओ, लोगों, मैं क्या करूँ ?' उस की दोनों सौतेली लड़कियाँ उस को चिढ़ाने के लिए कहतीं, 'सारी उमर तुम्हें खिलाता रहा है, अब खिलाना पड़ा है, तो मरी क्यों जाती हो ? जैसे हो खिलाओ।' बड़ी अजीब बात है, इन दोनों बहनों को अपने बाप पर तरस नहीं आता। लक्ष्मी को उन के तानों से आग-सी लग जाती। वह कहती, 'मैं इस बूढ़े बैल का दोज़ख भरूँ या इन मासूम लड़कियों का पेट पालूँ ? मैं क्या करूँ ? मेरी कौन-सी तनख्वाह बँधी हुई है ?

अगर नहीं देती, तो यह, डाँ-डाँ, करता रहता है। न जाने इसे कौन-सा जिन चिमट गया!........लोगों ! मैं किधर जाऊँ, तुम ही बताओ।........'

और जब वह सेहन में खड़े लोगों को सम्बोधित कर के अपनी सफ़ाई पेश कर रही होती, तो उस का बूढ़ा पति हाथ फैला-फैला कर एक अजीब से अमानुषिक स्वर में रोटी माँग रहा होता। सच्ची बात है, पास खड़े लोगों को उस पर तरस भी आता और हँसी भी।

आख़िर एक दिन........कुछ दिन पहले की बात है....लक्ष्मी उस बूढ़े का हाथ पकड़ कर कहीं ले गयी और जब वापस आयी, तो अकेली। अब वह बूढ़ा न जाने कहाँ है। लोग कहते हैं, लक्ष्मी उसे बड़े स्टेशन के पास भिखारियों के पुल पर छोड़ आयी है। लक्ष्मी की दोनों सौतेली लड़कियाँ दिन-भर उसे ताने देती रहती हैं और लक्ष्मी तानों का जवाब। और बच्चे और भी सहमे-सहमे रहने लगे हैं। सुनता हूँ, डर के कारण एक से अधिक रोटी नही माँगते।

अब आप चाहें, तो इसी तरह नाक पर रूमाल रखे वापस जा सकते हैं। यह इस गली का आख़िरी मकान था। जहाँ यह बदबू ख़त्म हो जाय, समझिए गली ख़त्म हो गयी।

टुकड़े

उस का मकान मेरे होटल से ऊपर बहुत दूर एक ऊँचे शिखर पर यों टिका हुआ है, मानो किसी बहुत ऊँचे वृक्ष की सब से ऊपर वाली शाखा पर कोई वृद्ध पक्षी बैठा हो। निपट अकेला, विरक्त, उदासीन। मकान के इर्द-गिर्द कई बड़े-छोटे वृक्ष हैं, जिन की हरियाली में से उठती हुई उस की सुर्ख़-सी छत दूर से यों नज़र आती है, किसी जैसे ने हरी-भरी घास पर गुल मौर के फूलों का एक ख़ेमा-सा लगा दिया हो।

नीचे की सड़क से दो पगडंडियाँ साथ-साथ ऊपर की ओर इठलाती हुई-सी चली जाती हैं, जैसे दो सहेलियाँ एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले अपनी बातों में मग्न सैर को निकली हों। मकान से कुछ नीचे माली की झोंपड़ी के पास पहुँच दोनों करीब-करीब एक साथ दम तोड़ देती हैं। वहाँ से चन्द पथरीली सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। उस रोज़ जब मैं उन सीढ़ियों पर चढ़ रहा था तो माली की पत्नी दरवाज़े में खड़ी थी। मुझे देखते ही उस की अँगुली होंठों पर जा टिकी। मैं ने सोचा, स्त्रियों का विस्मय शायद दुनिया-भर में इसी मुद्रा

में व्यक्त होता है। किसी भी अनहोनी बात को देखा और अँगुली को सहज ही ओठों पर टिका लिया ! मुझे पल-भर के लिए स्तम्भित देख कर उस अधेड़-सी पहाड़ी स्त्री की अँगुली होंठों से हट कर दाँतों पर जा रुकी और उस की आँखों में न जाने किन भावों के सम्मिश्रण से एक ऐसी चंचल-सी चमक पैदा हुई कि मुझे महसूस हुआ, जैसे मेरे हृदय की दरारों से कोई अंकुर फूट निकला चाहता हो।

इस क्षणिक-सी अकुलाहट ने मानो कई दिनों की संग्रहीत ऊब को एक बारगी दूर कर दिया। मुझे सब-कुछ हल्का-हल्का सा, धुला-धुला सा प्रतीत होने लगा। लेकिन बाकी सीढ़ियाँ चढ़ते समय सहसा मुझे इस उमड़ती हुई भावुकता पर ताज्जुब होने लगा। अपने-आप से झेंपने की जो आदत-सी बना ली है, शायद उसी के ज़ोर से फिर मेरे चेहरे की तनावें कस गयी थीं। उदासीनता ने होंठों के कोनों की कुंडलियों में कसी मुस्कराहट में विष घोल दिया और मेरे लिए पहाड़ और पहाड़गंज में कोई अंतर न रह गया। मुझे सारी चढ़ाई निरर्थक-सी लगने लगी। मन में आया कि तत्काल वापस अपने होटल की ओर उतर जाऊँ। क्या करूँगा किसी अपरचित से मिल कर ?

किन्तु सामने बरामदे में वह खड़ी मुस्करा रही थी, जैसे उस ने मेरे भीतर के विचारों को पढ़ लिया हो। उस की मुस्कराहट ने मेरी झिझक को झुँझला दिया। मैं उस की ओर बढ़ने के बजाय वहीं ठिठक गया। उस ने अपने हाथ कूल्हों पर रख लिये थे और मुस्कराहट को कुछ इस प्रकार मरोड़ कर मेरी ओर देखा, जैसे कोई किसी से झूठ-मूठ नाराज़ हो रहा हो।

उन चन्द क्षणों में उस के चेहरे ने न जाने कितने रंग बदले, न जाने मेरी नज़रों को कितने चकमे दिये थे। उस की आकृति का पहला प्रभाव कुछ ऐसा पड़ा, जैसे मैं ने सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्यों को

पहली बार एक साथ देख लिया हो। और ऐसे दृश्य को देख लेने के बाद मानो वापस लौट जाने का प्रश्न कदाचित् उठ ही नहीं सकता। मैं धीरे-धीरे उस की ओर बढ़ने लगा। उस ने मानो बीच का व्यवधान कम करने की खातिर आगे बढ़ कर कहा— मैं दरवाज़ा खोलती हूँ। तुम यहीं रुको।

इस आत्मीय स्वर को सुन कर कुछ अचम्भा-सा हुआ। इस में जो प्रतीक्षा विद्यमान थी, उसे इस प्रकट रूप में देख कर मुझे यों महसूस हुआ, जैसे मैं उस से कई बार पहले भी मिल चुका हूँ।

वह अन्दर चली गयी और मुझे सहसा बनर्जी की मुस्कराहट का खयाल आ गया। दिल्ली से चलते समय बनर्जी ने धीरे से कहा था, देखो यार, 'एक रोज़ उस से जा कर मिलना ज़रूर!' और फिर उस ने मेरे हाथ को आहिस्ते से दबा दिया था। और फिर उस के काले होठों पर गुलाबी-सी मुस्कराहट की एक पतली-सी लकीर खिंच गयी थी। और मुझे कालेज के दिन याद हो आये थे, जब हम बनर्जी की मुस्कराहटों की तुलना असमय के फूलों से किया करते थे।

"आओ!....दरवाज़ा कब का खुला है।"

मैं कुछ चौंक-सा गया। मेरी नज़रें बरामदे के सामने खिले शोलों पर जा टिकी थीं।

"मेरा नाम मैरियन है।"

उस का नाम मैरियन है। शायद उस ने मुझे अपना वह नाम बताना चाहा हो, जिस का सम्बन्ध उस के पति से न हो। जैसे उस ने इस मैरियन के बल पर अपनी उमर के कई वर्षों को फूँक मार कर उड़ा देने की एक बचकानी कोशिश की हो।

"लेकिन मैं तो मिसेज़ मार्शल से...."

"तो तुम बहुत देर से आये। मिसेज़ मार्शल कई वर्ष हुए मर

चुकीं। वैसे मेरा पूरा नाम मिसेज़ मैरियन मार्शल है।" यह कहते कहते उस के चेहरे पर कुछ साये से घिर गये।

मुझे अपनी ग़लती पर पाश्चात्ताप-सा करते देख कर उस ने बड़े प्यार से मेरी ओर देख कर पूछा—"बैठोगे नहीं ?"

हम दोनों कुछ देर के लिए एक-दूसरे की ओर टुकर-टुकर देखते रहे। न जाने उस ने उन क्षणों में क्या सोचा होगा, किन्तु मुझे यों लगा था, जैसे मैं प्रकृति के किसी अद्भुत दृश्य को देख रहा हूँ।

मैरियन और मिसेज़ मार्शल का अंतर उस की आँखों में सिमटता चला जा रहा था, मानो उस की आँखें मैरियन की हों और बाकी सारा शरीर मिसेज़ मार्शल का। और अपनी आँखों से झाँकती हुई मैरियन को छुपाने के लिए ही उस ने वह हल्के-काले रंग का चश्मा लगा लिया हो। ढलके हुए नोकदार चेहरे पर वह तड़पती हुई ऊँची-ऊँची आँखें और उन आँखों से फूटती हुई गर्म-गर्म किरणें।

"आप इस मकान में अकेली रहती हैं क्या ?"

"कोई किसी स्थान पर अकेले नहीं रह सकता।"

उस ने कुछ ऐसे भोलेपन से कहा कि सीधे से प्रश्न का वह टेढ़ा-सा उत्तर सुन कर भी मुझे लगा, जैसे मेरे प्रश्न का एक ही उत्तर हो सकता है, जो उस ने दिया था।

"मिस्टर मार्शल ?"

"चल बसे।....थैंक गुडनेस।"

साधारणतः मुझे चौंक पड़ना चाहिए था, किन्तु उस के लहजे में कोई ऐसा विशेष स्वर था, मानो सभी स्त्रियाँ अपने पति के उठ जाने के पश्चात् इसी प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करती होंगी। लगा कि उस से प्रश्न करने के बजाय यदि मैं उसे ग़ौर से देखता रहूँ, तो मेरे सब प्रश्नों का उत्तर अपने आप मिल जायगा।

"क्या तुम यहाँ छुट्टियाँ बिताने आते हो ?"

"कैसी छुट्टियाँ ?"

"कोई-सी भी।"

"हाँ, न जाने कैसे बीतेंगी।"

"यों किसी अपरिचित के सामने अपनी आशंकाओं की ओर ऐसा प्रकट संकेत दे कर मुझे कुछ अफ़सोस-सा हुआ।

"तुम शायद यहाँ पहली बार आये हो। अच्छी क्यों न बीतेंगी। कहाँ ठहरे हुए हो ?"

"हिल व्यू में।"

"बिल्कुल अकेले ?"

"बिल्कुल अकेले"—कह कर मैं ने उस की ओर यों देखा, जैसे देखने के बाद निश्चय करूँगा कि अपनी बात पर एक खोखली-सी मुस्कराहट दूँ या नहीं।

"ख़ुशक़िस्मत हो, अकेले रह सकते हो।"

और यह कहते-कहते उस का चेहरा यकायक कोरा-सा हो गया। उस ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और मुझे लगा कि मैं किसी बन्द दरवाज़े के सामने खड़ा हूँ।

"आप के पास बहुत किताबें हैं,— मैं ने धीरे से उस बन्द दरवाज़े को ठोकर दी।

"इन में से बहुत-सी मेरी नहीं हैं।"

"किस की हैं ?"

"मिस्टर मार्शल की। वो वकील थे। अच्छे-ख़ासे वकील थे। यहाँ उन के नाम पर एक सड़क भी है। बहुत लम्बी सड़क है। किसी रोज़ दिखाऊँगी।"

उस के चेहरे पर बेज़ारी के भाव झलक आये, जैसे अकस्मात् उसे

सारी बात बेसर-पैर की लगने लगी हो। आँखें फिर बन्द हो गयी थीं, मानो वह किसी छिपे अनजाने दर्द का रस चूस रही हों।

"आप को भी तो शौक होगा ?"

"किस बात का ?"

उस के प्रश्न के कितने ही अर्थ सम्भव थे। शायद उस ने यह कहना चाहा था कि उसे किसी बात का शौक नहीं, किन्तु वह मेरी ओर जिस तरह देख रही थी, उस से तो यही लगता था कि वह यह देखना चाहती थी कि मेरा संकेत उस के किस शौक़ की ओर है।

वह अपनी कुर्सी से मेरी ओर झुक आयी, जैसे मुझे ज़रा धीमे बोलने को कह रही हो। कह रही हो, धीमे स्वरों में जो सामीप्य है, ऊँचे स्वरों में नहीं।

मैं ने सिगरेट सुलगा लिया था।

"आप भी लीजिए।"

दियासलाई पकड़ते समय मेरी उँगली उस की हथेली से छू गयी। मुझे महसूस हुआ जैसे मैं ने किसी ठंडे सेब को छू लिया हो।

"मेरा मतलब था, आप का काफ़ी समय पढ़ने में बीतता होगा।"

नहीं कह सकता कि उस ने कश लगाया था या आह भरी थी।

मुझे इच्छा हुई कि वह मेरे प्रश्न का उत्तर देने के बदले कोई और बात छेड़ दे। मुझ से कोई प्रश्न पूछ ले, जिस का उत्तर देने के बजाय मैं कोई और बात छेड़ दूँ। उस से कोई प्रश्न पूछ लूँ। प्रश्नों का आदान-प्रदान होता रहे और उत्तरों के अनुमान लगते रहें। और जब कुछ देर बाद हमारे प्रश्नों की दो पोटलियाँ-सी बँध जायँ और मैं अपने हिस्से की पोटली उठा कर चलने लगूँ तो वह मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बैठा ले। दोनों पोटलियाँ खुल कर हमारे बीच बिखर जायँ और हम उन्हें समेटने की बजाय एक-दूसरे की ओर देख कर उन्मुक्त भाव

से हँस दें। और उस के बाद जब प्रश्नों का दूसरा दौर आरम्भ हो तो हमारे बीच का फ़ासला इतना कम रह गया हो कि काफ़ी देर वह एक साथ बोलती रहे और मैं सुनता रहूँ। और जब मैं बोलना चाहूँ तो वह मुझे रोक कर कह दे, पहले मेरी बात तो ख़त्म हो लेने दो, जब कोई बोल रहा हो, तो चुप रहना चाहिए। और मैं मुस्कराने की बजाय फिर उस को बात सुनने लगूँ।

पहले दिन से उस की आँखों में मुझे अपने इन बेहंगम विचारों का अक्स दिखायी दे रहा था।

"ऐनक के बग़ैर तुम्हारी आँखें बहुत अच्छी लगती हैं, क्यों?"

मेरा हाथ सहसा रुक गया और मैं ने ऐनक लगा ली। वह मुस्करा रही थी। मुझे लगा कि उस के वाक्य का एक हिस्सा मैरियन का था, वह जिस में मेरी आँखों की बात कही गयी थी। और अन्त का वह छोटा-सा 'क्यों' भी। और एक हिस्सा मिसेज़ मार्शल का, वह जिस में शुरू से ही 'आप' का स्थान 'तुम' और 'तुम्हारी ने' ले लिया था।

"लेकिन आप की आँखें तो ऐनक के साथ भी बहुत अच्छी लगती हैं, नहीं?"

उस ने तत्क्षण ऐनक उतार कर मेरी ओर देखा था। जैसे अनायास किसी ने किसी दूसरे के रुख से नक़ाब उलट दी हो।

अब मुझे उस के चेहरे पर दो मुस्कराहटें एक साथ दिखायी दीं, एक आँखों में और एक उस के होंठों में से फूटती हुई, उस के चेहरे को वीरान सी करती हुई। देखते-ही-देखते उस के दो टुकड़े से हो गये थे।

"मैं अपना वाक्य वापस लेता हूँ।"

मैं ने कुछ ऐसी गम्भीरता से कहा कि मैरियन और मिसेज़ मार्शल का अंतर एक सहज हँसी में घुल कर उस के चेहरे पर यों फैल गया कि मुझे अपने सम्मुख स्याही और सुर्खी का एक विचित्र-सा मिलाप

होता हुआ दिखायी दिया ।

हँसते-हँसते उस ने सिगरेट के लिए हाथ बढ़ा दिया ।

"बहुत ही नन्हें-नन्हें सिगरेट हैं । यहाँ मिलते हैं ?"

"हाँ, निचले बाज़ार में ।"

"आज ही मँगवाऊँगी । कितने प्यारे-प्यारे-से हैं !"

सिगरेट सुलगाने के बदले उस ने उस से कुछ इस अंदाज़ से खेलना शुरू कर दिया, जैसे उसे नन्हीं-नन्हीं चीजों से बहुत प्यार हो ।

"आप के कोई बच्चे ?"

"नहीं हैं । शुक्र है ! मुझे बच्चों से कोई लगाव नहीं ।"

"क्यों ?"

"वैसे ही ?"

मुझे लगा था, जैसे वह मुझे टाल रही हो ।

"आप का मतलब है कि........।"

"हाँ-हाँ, पूछो, झिझकते क्यों हो ? पूछो !"

किन्तु मेरा प्रश्न सुनते ही उस के चेहरे पर मुझे कुछ ऐसी अनजानी-सी वेदना सुलगती हुई दिखायी दी थी । जिस का कारण केवल बच्चों का अभाव नहीं हो सकता था । साथ-ही-साथ बात करने का यह नाटकीय अन्दाज़ मुझे अनावश्यक-सा लगा था । वह ख़ाहमख़ाह जैसे हर बात को रहस्यपूर्ण बनाती चली जा रही हो । मैं ने उस की इस विलक्षणता का सम्बन्ध उस की उम्र के संग जोड़ दिया और मेरे वेचारों की उड़ान पर कई बाज़ एक साथ झपट पड़े, मेरा भावावेग एकदम रुक-सा गया, उस के मार्ग में अचानक कहीं से भारी-भरकम चट्टानें टूट कर आ पड़ी थीं । मुझे याद हो आया कि यह हमारी पहली भेंट है, कि मैं एक वृद्धा के अतीत में घुसने का विफल प्रयास कर रहा हूँ, कि वह मन-ही-मन मेरी मूर्खता का मज़ाक़ उड़ा रही होगी, कि

मैं यों बातें करता चला जा रहा हूँ, जैसे वह मेरी प्रेयसी हो, कि मैं यों-ही अपनी ऊब मिटाने की खातिर उस के पास चला आया था; कि मेरा कुतूहल मेरी निष्क्रियता से जन्मा है। अचानक मुझे अब तक के सारे प्रश्न, सारे भाव बहुत ही बेहूदा लगने लगे। उस क्षण मुझे उस के व्यक्तित्व में कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखायी दे रही थी कि जिसे कुरेद निकालने के लिए मैं व्यर्थ अपना समय नष्ट करता रहूँ। अब की एक लहर ने मुझे ऊपर उछाल दिया। मैं उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, चलता हूँ।"

"क्यों, क्या हुआ? इस तरह एक झटके से उठ बैठने का मतलब?"

"यह मेरी आदत है।"

उस ने ऐनक उतार कर मेरी ओर देखा।

"अब?"

मैं ने कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु जहाँ खड़ा हुआ था, वहीं खड़ा रह गया। उस की आँखों में आँसू झलक आये थे। मैं विह्वल हो उठा किसी को यों अकारण रोता देख कर जो एक झुँझलाहट की प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी, उस के स्थान पर मन पर एक तीव्र आत्म-ग्लानि का प्रहार हुआ। मेरा तर्क फिर भावुकता में बदलता जा रहा था। और मुझे इस परिवर्तन पर आश्चर्य हो रहा था। उस ने मुझ अनजान के सामने जिस निस्संकोच ढंग से अपनी उन अतृप्त-सी अथाह आँखों में से मोती-से झलका लिये थे, उन्हें देख कर मुझे सहसा उस की उम्र भूल गयी, अपनी उम्र भूल गयी। मन में आया कि आगे बढ़ कर उन आँसुओं को अपनी अँजुली में भर लूँ। किन्तु जिस अंतर को आत्मा ने नज़र-अन्दाज़ कर दिया था, आँखें उसे अब भी देख रही थीं।

"देखिए, मुझे कुछ काम था।....मुझे आये काफ़ी देर हो गयी

है।....फिर किसी रोज़ आऊँगा।....आप की किताबों को देखना चाहता हूँ। आप भी आइए किसी समय होटल में।....आप घर पर किस समय रहती हैं?...."

मैं काफ़ी देर यों ही बोलता चला गया। और वह विमुग्ध-सी मेरी ओर देखती रही। फिर मैं चुपचाप बैठ गया। और उस की आँखों में उमड़े हुए आँसू मुस्करा उठे।

मुझे लगा, जैसे किसी ने मुझे अपनी ओर खींच कर भाग निकलने के तमाम रास्ते बन्द कर दिये हों।

अब मैं आराम से बैठ गया था। और वह मेरी ओर देख रही थी, जैसे कोई किसी से बहुत मुद्दत के बाद मिला हो और अब उस अन्तराल की समस्त घड़ियों को अपनी निगाहों में पिरो लेना चाहता हो।

बहुत देर बाद जब उस ने फिर बोलना शुरू किया, तो उस के लहजे में गम्भीरता के वे स्वर सुनायी दिये, जो इधर-उधर की तमाम ऊपरी बातों से निपट लेने के बाद आ सकते हैं।

"तुम्हारे आने से पहले मैं ऊपर के एक कमरे में बैठी कुछ पढ़ रही थी। दरवाज़ा बन्द था। पढ़ते-पढ़ते अनायास यों लगा था, जैसे कि कोई मेरे घर की ओर चला आ रहा हो, जिसे देखते ही मैं फूट-फूट कर रोने लगूँगी। मैं नीचे चली आयी थी। और सामने तुम खड़े थे। तुम्हें देख कर मुझे यों लगा, जैसे वह व्यक्ति तुम ही हो। अगर तुम हँसो नहीं, तो मैं यह कहना चाहती हूँ कि तुम से कई बार पहले भी मिल चुकी हूँ।

इस प्रकार की कोई बात पढ़ या सुन कर मेरे होंठों में प्रायः विशेष प्रकार के कुछ बल-से पड़ जाते हैं और उन बलों में से एक विषैली-सी मुस्कराहट फटने लगती है। किन्तु उस समय मुझे यों लगा कि जो

वह मुझे बता रही है, उसे पहले भी कई बार उसी से सुन चुका हूँ।

"कभी तुम्हें भी ऐसा अनुभव हुआ है ?"

यदि उस ने यह प्रश्न न किया होता तो मेरे लिए ऐसे अनुभवों के अस्तित्व से इन्कार करना मुश्किल हो जाता।

"नहीं।"

"तो तुम्हारी नज़र बहुत कमज़ोर है।"

एक काफी खामोशी-सी हँसी उस के मुँह पर से उड़ती हुई मेरी 'नहीं' को लजा गयी।

"मुझे तो अपनी ज़िन्दगी के हर मोड़ पर इसी प्रकार के कई विचित्र अनुभव हुए हैं। शायद इसीलिए अब कुछ ऐसी उलझ-सी गयी हूँ कि....''उस ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

"कल किसी समय तुम्हारे होटल में आऊँगी। शाम को, कहीं घूमने चलेंगे। कहीं भी, चारों तरफ कितने ही रास्ते हैं।

उस ने यों बाँहें फैला कर कहा था, जैसे हम किसी असीम मैदान में खड़े हों और हमारे इर्द-गिर्द, दूर-दूर तक उजले-उजले, अनगिनत रास्तों की रेखाएँ-सी खिंची हुई हों और सभी रास्ते एकदम सूने पड़े हमारा इन्तज़ार कर रहे हों।

दूसरे रोज़ शाम को मैं उसे होटल के गेट पर मिला। रात-भर मुझे अजीब-अजीब सपने आते रहे। और सुबह से अब तक मैं उन सपनों के धूमिल अवशेषों में भटकता हुआ इधर-उधर घूमता रहा था। किन्तु जब उस ने पूछा, 'कहो, दिन-भर क्या करते रहे,' तो मैं ने कह दिया, सोया रहा हूँ। वह मेरे झूठ पर मुस्करा दी। और मुझे उस की वह मुस्कराहट बहुत ही बुरी लगी। उसे, जिसे धुंध में लिपटा हुआ देखा था, वह अब कहीं नहीं थी। इस समय वह कुछ ऐसी नपी-तुली

सी, बँधी-बँधायी-सी दिखाई दे रही थी, जैसे बिस्कुटों का डिब्बा हो।

उस की जिन आँखों को देख कर मैं कल तड़प उठा था, वे अब मुझे नज़र ही नहीं आ रही थीं। उस ने बहुत ही गहरे-काले रंग का चश्मा पहन रखा था। उस से हाथ मिलाते समय मेरे दिल की गति तेज़ हुई, न कम। उसे देख कर मुझे अपनी फटी हुई नींद के शिगाफों में से वे सपने दिखायी देने लगे। और मुझे कुछ मतली-सी हो आयी।

होटल का मालिक गेट से कुछ दूर खड़ा था। मैरियन को देख कर उस ने वहीं से, 'हेलो मिसेज़ मार्शल!' कहा। मैरियन ने बड़े तपाक से आगे बढ़ कर उस से हाथ मिलाया। फिर वे दोनों देर तक ऐसी फ़जूल-फ़जूल-सी बातें करते रहे कि मैं कट कर परे जा पड़ा। वे बड़े उत्साहपूर्ण लहजे में न जाने उस नगर के किन-किन लोगों की निन्दा कर रहे थे। होटल के मालिक से तो मुझे ऐसी बातों की आशा हो सकती थी, परन्तु मैरियन भी खूब चटखारे ले-लेकर उस वाहियात व्यक्ति की हर बेहूदा बात-से-बात मिला कर यों हँस रही थी कि मुझे लगा, जैसे मैं उसे उस के असली रंग में देख रहा हूँ। किसी की निन्दा करने में भी एक सलीके की ज़रूरत होती है। किन्तु वे दोनों फूहड़ ढंग से बोलते चले जा रहे थे, जैसे जब कभी मिलते हों, इसी प्रकार के घिसे-पिटे विषयों को ले बैठते होंगे। मुझे उन दोनों की बातों से एक ऐसी घिन आने लगी, जो केवल एक विशेष प्रकार के वृद्धों की गली-सड़ी बातों से ही आ सकती है।

और वहाँ से क्लब तक पहुँचते-पहुँचते मैरियन ने मुझे उस होटल के मालिक की कमीनी हरकतों का किस्सा पूरी तफ़सील से सुना डाला यदि इस दौरान में उस ने एक बार भी मेरी ओर देखा होता तो शायद वह चुप हो जाती। किन्तु वह मुँह ऊपर उठाये बोलती चली जा रही

थी और मैं सिर नीचे किये कुढ़ता चला जा रहा था। कई बार वह बात करते-करते अपने-आप ही हँस दी और मुझे उस की हँसी में कहीं उस पहली मुलाकात की मुस्कराहटों के बीज नहीं दिखाई दिये। कहीं वह दर्द महसूस नहीं हुआ, जिस का सम्बन्ध मैं उस के व्यक्तित्व से जोड़ चुका था। एक वृद्धा के संग घिसटता हुआ उस की शुष्क बातों को सुन-सुन कर मन-ही-मन मैं बहुत बेरहमी से उसे कोस रहा था, अपने-आप को भी कोस रहा था।

उस के हाथ में एक पुस्तक थी, जिसका शीर्षक पढ़ कर उस के घर पड़ी पुस्तकों को उलटने-पलटने की उत्सुकता ख़त्म हो गयी।

उस के लिबास की व्यवस्था को देख कर एक बार फिर मेरे हाथों में जैसे बिस्कुटों का डिब्बा आ गया है।

• क्लब में उस समय खासी चहल-पहल थी, जिसे देखते ही मैरियन का चेहरा बुझते हुए अंगारों-सा जान पड़ा था। हाल में दाखिल होने से पहले उस ने मेरी ओर देख कर वापस लौट जाने का ख़ामोश-सा सुझाव दिया था फिर वह मुझे वहीं छोड़ कर लाइब्रेरी की ओर चल दी। उस के जाते ही हाल में बैठे लोग आपस में चेमगोइयाँ करने लगे।

मैं एक उचटती हुई नज़र से उन लोगों की ओर देख कर एक खिड़की के पास लगी खाली मेज़ पर जा बैठा और वहाँ बैठते ही मैं ने मैरियन को अपने ज़ेहन से झाड़-सा दिया। खिड़की के बाहर दूर-दूर तक फैली हुई पहाड़ियाँ यों दिखायी दे रही थीं, जैसे गदराई हुई असंख्य चंचल स्त्रियाँ उजली-पीली धूप में पास-पास बैठी केश सुखा रही हों। कभी-कभी मदमस्त हवा के बेचैन झोंके उन केशों की खुशबू को उठाये हुए खिड़की के पास से निकल जाते और मुझे लगता, जैसे बाहर धूप में बैठी स्त्रियाँ मुझे इशारे कर रही हों। मुझे सहसा ऐसा

लगा, यदि मैं वहाँ से उठ कर खिड़की से बाहर कूद कर दौड़ता हुआ उन के पास जा पहुँचूँ, तो उन्हें अपने मज़ाक़ों का जवाब मिल जाय। एक-दो बार मुझे ऐसा महसूस हुआ, मानों उन्होंने मेरे दिल में उठते हुए इन विचारों को न जाने कैसे समझ कर अपनी खुशबूओं को अपने-आप में समेट लिया हो और अब सँभल कर बैठ गयी हों। जैसे कहना चाहती हों—वो तो केवल मज़ाक कर रही थीं, वैसे उन्हें शर्म और हया का बहुत ख़याल है।

मैरियन हाल में दाख़िल हुई और चेमगोइयाँ बन्द हो गयीं। कुछ लोगों ने उठ कर उसे 'हेलो-हेलो !' किया और बैठ कर हमारी ओर देखने लगे। बैठते हुए मैरियन ने फुँकारती हुई आवाज़ में कहा-"ओ आई हेट दीज़ पीपल !"

वह कह रही थी—"इस में अधिकतर मेरे पति के चहेते दोस्त हुआ करते थे। उफ ! आज इस समय यह सब यहाँ किस लिए आ जमा हुए हैं ! आम तौर पर तो इस समय मेरे सिवा यहाँ कोई नहीं आता।....शायद कोई जशन होगा। उफ् !....अगर मुझे पता होता, तो...."

उसे इस तरह उबलते देख कर मुझे एक प्रकार की उलझन सी हो रही थी। मैं ने एक बैरे को बुला कर पूछा यहाँ आज कोई ख़ास दावत हो रही है ?

"जी हाँ, आज मिस्टर मार्शल का जन्म-दिन मनाया जा रहा है। वह इस क्लब के...."

किन्तु मैरियन ने 'बस-बस' कह कर उसे मना कर दिया। बैरा बुड़बुड़ाता हुआ चला गया। और मैरियन तड़प कर उठ खड़ी हुई। "उठो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी ! उठो !"

"चाय तो पी लें।"

"नहीं, उठो ! अभी उठो !"

मैरियन का भर्राया हुआ स्वर हाल में गूँज उठा।

सब लोग हमारी ओर देख रहे थे। मैं एक क्षण के लिए उद्भ्रांत-सा बैठा रहा। फिर मुझे अचानक यों लगा कि यदि मैं उसी पल उठा नहीं तो वह वहीं फ़र्श पर बैठ कर एड़ियाँ रगड़ने लगेगी; अपने बाल नोच लेगी, मेरे बाल नोच लेगी—मेरे सामने एक बिफरी हुई बच्ची खड़ी थी !

बरामदे तक वह मुझे क़रीब-क़रीब घसीटती हुई ले गयी। मैं ने कहा "वे लोग क्या सोचते होंगे ?"

उस ने पाँव पटक कर उन लोगों को एक गाली देते हुए कहा—"वे जायें जहन्नुम में ! अब मुझे किसी की कोई परवाह नहीं। वह मर गया, जिस के डर से मैं बरसों से इन बेवक़ूफ़ों को बरदाश्त करती रही। जन्म-दिन मना रहे हैं ! उँह !" काँपती हुई वह एक कुर्सी में जा गिरी।

"मिसेज़ मार्शल !"

"मैरियन कहो !"

उस ने कड़क कर कहा। मैं इतना सहम गया कि कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं हुई।

"मेरे लिए ये-सब भी उसी के संग मर गये थे, जिस से मुक्त होने की प्रतीक्षा में मैं ने अपनी ज़िन्दगी के कई बेहतरीन साल ग़र्क़ कर दिये। मेरा बस चले, तो एक-एक को पकड़ कर ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ दूँ।

उस के रोम-रोम से लपटें निकल रही थीं। उस के हाथ किसी घायल पक्षी की तरह फड़-फड़ा रहे थे। अब वह उठ कर सामने दीवार पर टँगी एक तस्वीर के सामने जा खड़ी हुई थी। तस्वीर के फ्रेम से एक

हार लटक रहा था। काफ़ी देर मुट्ठियाँ भींचे वह मेरी ओर पीठ किये उस तस्वीर के सामने खड़ी रही। उस की एड़ियाँ उचक रही थीं, मानो कोई किसी खाई में कूद जाने से पहले झिझक रहा हो। और फिर सहसा उस ने पलट कर मेरी ओर देखा। उस की आँखों में खून उतर आया था, जिस की सुर्खी खींच कर मुझे उस के पास ले गयी।

"टके-टके के छोकरों की खातिर इस कुत्ते ने....।"

और वाक्य पूरा करने के बदले उस ने तस्वीर पर थूक दिया।

मैरियन के थूक के कतरे तस्वीर के मुख पर जहाँ-तहाँ टिके सिफ़लिस के दानों से नज़र आ रहे थे। और उन के पीछे से झाँकती हुई मुस्कराहट मानो मैरियन के रोष पर एक तीखा व्यंग हो।

सड़क पर पहुँच कर उस ने एक हाथ मेरे कन्धे पर रख कर काँपते स्वर में कहा—"घबराओ नहीं। अभी कुछ देर में फिर सम्हल जाऊँगी।"

फिर उस ने क़दरे झुक कर मेरे लटके हुए चेहरे को अपनी निगाहों के सहारे ऊपर उठा लिया मेरे होंठ झनझना उठे। मैं ने अपना बाजू उस की कमर में डाल दिया और मुझे किसी को सहारा देने और मुझे किसी का सहारा लेने की लज़्ज़त एक साथ अनुभव हुई।

हम एक पगडंडी पर उतर कर एक ढलवान पर जा बैठे। अंधेरा अपने आँचल में चाँद की किरणों को छुपाये घिरता जा रहा था। वृक्षों में झिलमिल करते जुगुनू ऐसे लग रहे थे, जैसे तिमिर के तन में दर्द की टीसें उठ रही हों।

पास ही किसी दिशा से किसी पक्षी का सुरीला, किन्तु थका हुआ स्वर अनजाने शब्दों की मर्मवेधी पंक्तियों-सी हृदय पर अंकित कर रहा था।

मैरियन ने चश्मा उतार दिया। और उस के चेहरे की घटाओं में

तो तारे-से छिटक आये थे।

"मिसेज़ मार्शल, आप...."

"मैरियन कहो!"

मैं ने अपना वाक्य पूरा करने की आवश्यकता नहीं समझी।

"घबराओ नहीं, अभी सम्हल जाऊँगी।"

उस की आवाज़ के ठहराव में उस के आँसुओं की नमी नहीं थी। और उन आँसुओं की नमी में आवाज़ का ठहराव नहीं था।

और मुझे यों लगा, जैसे मेरे सामने कोई अति सुन्दर, अति कोमल वस्तु टुकड़े-टुकड़े हुई पड़ी हो और उन में कुछ ऐसे हों, जो अपने-आप में अब भी पूरे हों।

ऊपर आकाश में छिटका हुआ चाँद मानो उन पूरे टुकड़ों में से एक हो।

ख़ामोशी

यहाँ से वह नन्हीं-सी आबशार साफ़ दिखायी दे रही है। उस की किलकारियाँ सारे वातावरण में रची हुई हैं। हवा कभी-कभी इस शोख़ी से मचलने लगती है कि आबशार की आवाज़ किसी फरेरे की भाँति लहरा उठती है। और मेरे शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ जाती है, जैसे सामने बिजली का कोई कौंधा लपक गया हो।

मेरी दृष्टि आबशार के फिसलते हुए निर्मल जल पर जमी हुई है। ऐसा महसूस हो रहा है कि कोई अपूर्व अवसर हाथों से निकला जा रहा हो। मैं आँखें बन्द कर लेता हूँ। तब लगता है, जैसे दूर कहीं हल्की-हल्की बारिश हो रही हो या कहीं से कोई मुझे पुकार रहा हो, बड़े अनुनय के साथ, धीरे-धीरे, बार-बार !

हम दोनों ख़ामोश हैं। ऐसे बैठे हैं, मानो हम दो न हो कर एक हों। जब बैठे थे, तो मेरा ख़याल था कि जी खोल कर बातें होंगी। भीतर से बहुत-कुछ उमड़ा आ रहा था। कई बार ऐसा हुआ है। कई बार जी में आया है कि अपने इस दोस्त के बीच बरसों से जमी बर्फ़ को अपनी बातों की गर्मी से पिघला दूँ। किन्तु हर बार बर्फ़ की एक परत और जम जाती है।

लेकिन इस समय यह खमोशी बड़ी स्वाभाविक-सी अनुभव हो रही है। लग रहा है, जैसे सब बातें व्यर्थ हों और एक अटूट मौन ही सब शब्दों का सार हो। यदि इस समय हम दोनों में से कोई एक बोल उठेगा, तो एक छोटा-सा अनर्थ हो जायगा कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है।

यह खामोशी, यह एकान्त और यह मकान और इन तीनों को लोरियाँ देती हुई वह नन्ही-सी आबशार। एक अजीब कैफ़ियत पैदा हो रही है, जिस की रेखाएँ अस्पष्ट हैं, प्रति क्षण बदल रही हैं।

मैं आबशार पर से दृष्टि हटा लेता हूँ। मेरा दोस्त अब भी उसी ओर निहार रहा है। उस का चेहरा भावशून्य है। मैं उस की ओर देखता हूँ। एक टक देखता रहता हूँ। किन्तु मेरी टिकटिकी से उस की अनुपस्थित मुद्रा में कोई लरज़िश पैदा नहीं होती। लगता है, हम दोनों किसी तीसरे की प्रतीक्षा कर रहे हों, परन्तु हम इस समय बिलकुल अकेले हैं। यदि कोई तीसरा होता, तो कैफ़ियत और होती। हमारी प्रतीक्षा व्यर्थ है। मैं यह बात अपने दोस्त तक पहुँचाना चाहता हूँ, किन्तु हमारे बीच एक अनजान मौन के सिवा और कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। जब वह खामोश हो तो उसे निगाहों से कोंचना फ़ज़ूल है। और शब्दों का प्रयोग इस समय अत्यन्त क्रूरता बरतने के बराबर होगा। कुछ बोलना अपने दोस्त की खामोशी का अपमान करना होगा। मेरी निगाहें मकान की ओर उठ जाती हैं।

मकान बहुत पुराना है। बहुत बरस हुए हैदराबाद के एक नवाब ने बनवाया था। साल-भर में दो महीने वह नवाब अपनी एक चहेती बेगम के संग इस मकान में रहा करता था। फिर वह बेगम इसी मकान में चल बसी थी। इस से नवाब को इस स्थान से विरक्ति हो गयी थी। बरसों मकान ख़ाली पड़ा रहा। और नवाब की मृत्यु के

५

बाद उस के एक लड़के ने इसे मेरे दोस्त के हाथों बहुत कम क़ीमत पर बेच दिया था। कोई इस उजड़े हुए मकान को खरीदने के लिए तैयार नहीं था और नवाबज़ादे को पैसों की ज़रूरत थी। उन्हीं दिनों मेरे दोस्त ने अमीना से शादी की थी और शहर से कुछ दूरी पर रहने का निश्चय भी।

मकान में कम-से-कम परिवर्तन किये गये हैं। दूर से यह अब भी उजड़ा हुआ नज़र आता है। शाम ढलते ही एक गहन उदासी-सी इस पर घिर आती है। अन्दर बैठे रहना मुश्किल हो जाता है। कुछ लोगों का कहना है, उस बेगम की रूह अब भी यहीं कहीं छटपटा रही है। अमीना इस बात पर हँस दिया करती है। मेरा दोस्त उस हँसी में शामिल नहीं होता। शायद उसे बेगम की रूह के छटपटानेवाली बात इतनी असम्भव प्रतीत नहीं होती। किन्तु उस ने कभी इस विषय में कुछ कहा नहीं। अमीना की कई बातों को वह खामोशी से सुन-भर लेता है। कई बार तो ऐसे लगता है, जैसे कुछ सहन कर रहा हो या टाल रहा हो। वैसे मुझे उस की यह आदत पसन्द है। इस से उन दोनों में फ़ज़ूल की तकरार नहीं होती। लगता है, दोनों एक ही दिशा में जा रहे हों।

अमीना मेरे दोस्त की इस आदत के बारे में क्या सोचती है, नहीं जानता। शुरू-शुरू में जानने की कोशिश की थी, जानने की नहीं, बल्कि कुदेरने की। कुछ पता नहीं चला था। तब कभी-कभी यह कल्पना भी किया करता था कि उसे मेरे दोस्त की यह खामोशी नागवार गुज़रती होगी। उस से जो बड़प्पन टपकता है, वह कई बार बोझल हो जाता होगा। सोचा करता था कि अमीना कभी-कभी फ़ज़ूल बहस या तकरार की अपेक्षा भी करती होगी। किन्तु अब लगता है कि मेरी इस कल्पना की जड़ें भी मेरे अपने व्यक्तित्व और

मेरी अपनी आन्तरिक इच्छाओं में रही होंगी।

जब इन दोनों की शादी हुई थी, तो कई दिनों तक ऐसा महसूस होता रहा था, जैसे मैं अकेला रह गया हूँ। ऐसा एहसास कई बार अब भी होता है; लेकिन अब शायद दूर भी हो जाय। मेरी अपनी स्थिति बदल रही है।

मैं कुछ देर के लिए वापस अपनी ओर लौट आता हूँ। इस से कुछ बेचैनी-सी होने लगती है। कुछ सिकुड़ने का आभास होता है। आस-पास दीवारें-सी खड़ी होने लगती हैं। मैं अपने दोस्त की ओर देखता हूँ, वह यहाँ नहीं है। उस का चेहरा इस समय इतना कोरा-कोरा क्यों नज़र आ रहा है? शायद वह बहुत थका हुआ है। दिन-भर काम करता रहा है। दिन भर उस ने मुझ से कोई बात नहीं की। क्यों? वह एकान्त प्रिय है। मैं भी हूँ। हम हमेशा से आपस में बातें बहुत कम करते हैं, लेकिन इस बार तो उस ने कई पत्र लिख कर मुझे बुलाया है। आख़िर कुछ तो कहा होता। मैं एक झटके से इस दबाव के नीचे से भाग निकलता हूँ।

एक कमरे में उस बेगम का चित्र अब भी टँगा हुआ है। बहुत पुराना चित्र है। साफ़ दिखायी भी नहीं देता। मुझे इस चित्र में कोई विशेष आकर्षण नहीं लगता। एक साधारण-सी ख़ूबसूरत औरत बैठी न जाने कौन-से ख़यालों में डूबी हुई एक-टक किसी चीज़ की ओर देख रही है। किन्तु मेरा दोस्त कभी-कभी इस चित्र को बड़े ग़ौर से देखने लगता है टिकटिकी बाँध लेता है, कोण बदल-बदल कर देखता है। एक बार अमीना ने हँसते हुए कहा था—कोई इस तस्वीर को उठा ले जाय, मुझे इस से बहुत से ख़तरे होने लगे हैं।

उस ने मज़ाक में ही कहा होगा। परन्तु मुझे लगा था, जैसे वह मेरे दोस्त का मज़ाक उड़ा रही हो। और मैं ने इस मज़ाक़ की तह

में जाकर उस में अपने दोस्त की कोई कड़ी आलोचना देखने की कोशिश की थी। मैं ने समझा था कि वह मेरे दोस्त के पोज़ का मज़ाक उड़ा रही है। शायद मैं ने चाहा भी यही। उन दिनों, अब ऐसा याद आता है, मैं अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ता रहता था। दिल में अपने दोस्त के प्रति एक अजीब-सी विरोध की भावना बनी रहती थी, जैसे उस ने मेरे साथ धोखा कर दिया हो। अब कभी सोचता हूँ, तो वे तमाम सूराख़ काल्पनिक प्रतीत होते हैं, जो उन दिनों मैं बड़ी मेहनत से इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों में निकाला करता था। अगर वे सचमुच मौजूद होते, तो मेरे दोस्त का विवाहित जीवन अब तक बर्बाद हो चुका होता। अब सोचता हूँ, तो शर्मसारी का एहसास होता है।

किन्तु अब वह ईर्ष्या की भावना करीब-करीब दूर हो गयी है। कुछ अवशेष यदि रह गया होगा तो वह शादी के बाद मिट जायगा। उन की शादी अब तीन साल पुरानी हो चुकी है। अपनी शादी के बाद न जाने कितनी देर तक मैं इस नये अनुभव में डूबा रहूँगा। मैं अपने दोस्त से कुछ बातों में बहुत भिन्न हूँ। उस का अलगाव कभी दूर होता ही नहीं। अमीना के साथ शादी कर लेने के बाद भी नहीं हुआ। वह हर अनुभव से दामन बचा कर चलने का आदी है, कभी अपने आपको ढीला नहीं छोड़ता। अपने-आप को ख़ूब कस कर रखता है। कुछ लोग इसी कारण उस की बहुत-सी आदतों को पोज़ कह कर उन की आलोचना करते हैं। मैं ने उसे बहुत करीब से देखा है, बरसों से देख रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि वह मजबूर है। मुझे खतरा था कि अमीना भी शायद उसे ग़लत समझेगी, क्योंकि उम्र के साथ-साथ उस की सारी आदतें और पक्की हो गई हैं। मैं सोचा करता था कि अमीना उस की तह को नहीं पहुँच पायेगी। अच्छा ही हुआ कि

मेरी सोच; मेरे ख़तरे ग़लत निकले, नहीं तो मेरे दोस्त को बहुत दुःख होता। उसे अमीना से अधिक प्यार है; यह शायद अमीना भी नहीं जानती होगी। मेरे दोस्त ने कभी इस प्यार को पर्याप्त शब्दों में या भावों में व्यक्त नहीं किया होगा, मैं स्वयं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ।

सहसा इच्छा हो आयी है कि यह मौन तोड़ दूँ, यह मौन जो बरसों पुराना है, जो आसानी से टूटेगा नहीं, जानता हूँ। मैं उसे बता देना चाहता हूँ कि मेरा भविष्य किसी तब्दीली का इन्तज़ार कर रहा है। मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसी बात करूँ, जिस पर हम दोनों ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगें, लेकिन शब्द ज़बान तक नहीं आते। जो आते हैं, उन्हें दबा देता हूँ। वे ठीक नहीं हैं। लगता है कि अपने बारे में कुछ कहने लगूँगा, तो बोलते-बोलते बीच में ही रुक जाऊँगा। जितना कहूँगा, वह सुन लेगा। जो बाकी रह जायगा, अन्दर-ही-अन्दर रिसता रहेगा। नहीं, मैं कुछ नहीं कहूँगा। मैं फिर मकान की ओर देखने लगता हूँ।

बेगम के चित्र के अलावा मेरे दोस्त को इस मकान के एक कोने में एक छोटा-सा सन्दूकचा भी मिला था। उस में बेगम के नाम नवाब के एक दोस्त के सैकड़ों पत्र थे। जब वह सन्दूकचा खोला गया था, तो मैं यहीं था। बहुत दिनों तक मेरा दोस्त उन पत्रों को तरतीब देता रहा था। उन्हीं के आधार पर उस ने एक उपन्यास लिखने की बात भी कही थी। अमीना को उन पत्रों के बारे में कुछ नहीं बताया गया था। मेरे दोस्त ने मुझे मना कर दिया था, नहीं तो मैं उसे ज़रूर बताता। किसी औरत की बेवफाई की बात किसी दूसरी औरत से करने से मुझे एक अजीब प्रकार की तृप्ति मिलती है। ऐसा लगता है, जैसे मैं ने कुछ साबित कर दिखाया हो। अमीना ने भी उस सन्दूकचे

को देखा तो होगा । शायद उस के बारे में कुछ पूछा भी हो । मेरे दोस्त ने झूठ बोल दिया होगा । छोटे-छोटे झूठ वह निस्संकोच बोल देता है । अमीना ने शायद उन पत्रों के बारे में भी पूछा होगा । और उस ने यों ही कुछ कह कर टाल दिया होगा । अमीना खामोश हो गई होगी । मैं ने उस से सन्दूकचे की बात अमीना से छिपाने का कारण पूछा था । उस ने कहा था; वैसे ही, कोई ख़ास कारण नहीं । कोई ख़ास कारण रहा भी नहीं होगा । कई छोटी-छोटी बातें वह अकारण ही हर एक से छिपाता रहता है । उस की यह आदत भी काफ़ी पुरानी है । इस से कॉलेज के दिनों में हमारे बीच भी कई बार ग़लतफ़हमियाँ पैदा हुईं । अब नहीं होतीं, गोकि झुँझलाहट अब भी होती रहती है ।

शायद वह उपन्यास पूरा हो गया हो । शायद उस ने मुझे वही उपन्यास सुनाने के लिए बुलवाया हो । पूछूँगा नहीं । अगर उस के लिए बुलवाया होता तो कुछ कह दिया होता । शायद उस का इरादा बदल गया होगा । पूछूँगा नहीं । अगर उस ने न भी लिखा होता तो भी मेरा आना ज़रूरी था । वैसे ही इस बार बहुत देर बाद आया हूँ । ख़याल था कि वह इस देरी का कारण पूछेगा तो बता दूँगा । अब नहीं बताऊँगा । अमीना यहाँ होती, तो शायद बिना पूछे ही बता देता । उस से झिझक बहुत कम महसूस करता हूँ । अपने इस दोस्त से अकेले में बहुत कम बातें होती हैं । शुरू से ही कुछ ऐसा चला आ रहा है । जब तक कोई तीसरा हमारे साथ न हो, कोई बात ही नहीं हो पाती । कॉलेज के दिनों में भी कुछ ऐसा ही हुआ करता था । लेकिन उन दिनों जब कोई ख़ास बात करनी होती थी, तो लिख के कर लिया करते थे और इस पर हँसी नहीं आती थी । अब ऐसा नहीं कर पाता । अब तो पत्रों में भी विस्तार से कुछ नहीं लिख पाते । न

जाने क्यों घनिष्टता के साथ-साथ हमारा संकोच भी बढ़ता ही चला आया है। कभी-कभी तो इस घनिष्टता पर भी सन्देह-सा होने लगता है। किन्तु यदि यह भी न होता तो इतने बरस अलग-अलग शहरों में, अलग-अलग कामों में व्यस्त रहने और अलग-अलग परिस्थितियों में से गुज़रने के बाद भी इस समय यों हम साथ-साथ न बैठे होते। कोई तो ऐसा सूत्र होगा, जो हमें एक-दूसरे से बाँधे हुए है। मेरा सन्देह ग़लत है। सन्देह अपनी दोस्ती पर नहीं, बल्कि अपनी ज़बानबन्दी की इस आदत के औचित्य पर होना चाहिए। परन्तु यह आदत अब बदलेगी नहीं। वैसे भी बातें करना कोई इतना ज़रूरी और अनिवार्य काम तो नहीं और यदि बातों के बिना ही आत्मीयता बनी रहे, तो बुरा क्या है। बातें स्थूल हैं, मौन सूक्ष्म।

मकान के इर्द-गिर्द एक बाग़ीचा-सा है। उसे बाग़ीचा कहना ठीक नहीं। फूल तो हैं, लेकिन क्यारियों में बँटे हुए नहीं। घास है, लेकिन काटी नहीं जाती। पहले एक माली रहा करता था, अब वही माली खाना बनाता है। फलों के कुछ पेड़ भी हैं, लेकिन फल नहीं देते, शायद बहुत बूढ़े हो चुके हैं, या शायद वैसे ही नहीं देते। दो ठूँठ हैं, ऐसे दिखायी देते हैं कि दो खुरदरे हाथ ऊपर को उठे हुए हों! कई बार इन की उम्र का अनुमान लगा चुका हूँ। कई वृक्ष बहुत ऊँचे हैं, जिन की चोटियों तक पहुँचने के लिए गरदन को काफ़ी टेढ़ा करना पड़ता है। ये वृक्ष घोंसलों से अटे रहते हैं। सुबह-शाम इन में जान-सी पड़ जाती है। इस समय भी कुछ सरगोशियाँ-सी कानों में पड़ रही हैं। थोड़ी ही देर में, सूर्यास्त के बाद, यही सरगोशियाँ इस ज़ोर से गूँजने लगेंगी कि उन से उस आबशार की आवाज़ को जुदा करना मुश्किल हो जायगा। बरामदे में खड़े हो कर इस ऊँची-नीची हरियाली पर नज़र डालने से आँखें धुल जाती हैं। दोपहर को

यदि धूप हो, तो एकदम ऐसा सूनापन छा जाता है कि महसूस होने लगता है, हम तीनों ने बनवास ले लिया हो। और अँधेरा हो जाने पर चारों ओर ऐसी विचित्र ख़मोशी सरसराने लगती है कि इस आबशार की आवाज़ मानो त्रस्त-सी हो जाती है। दिन-भर में यहाँ का वातावरण कई रंग बदलता है।

अमीना को कई बार इस बाग़ीचे में अकेली टहलते देखा है। टहलते-टहलते कई बार वह सर को ज़ोर से झटक देती है। एक बार उस से पूछा था। वह मुस्करा दी थी। मुझे लगा था, जैसे उस ने जवाब देने से इन्कार कर दिया हो। मैं ने अपने दोस्त की ओर देखा था। उस ने मेरा प्रश्न नहीं सुना था, पर शायद वैसे ही छिपा रहा था। मुझे लगा था कि अगर वह उस समय पास न होता, तो अमीना मुस्कराने के बाद कुछ-न-कुछ ज़रूर कहती। हम दोनों एक साथ होते हैं, तो वह अपने बारे में बहुत कम कहती है, किसी का जवाब पूरी तरह से नहीं देती। अगर वह इस समय यहाँ होती, तो हम दोनों से कुछ दूर अकेली टहल रही होती। मैं उस की ओर देख रहा होता और शायद यह सोच रहा होता कि वह खोयी-खोयी-सी क्यों है। जब कभी उसे बाग़ीचे में देखा है, यही ख़याल मन में उठा है। हर बार ऐसा लगा है, मानो सामने कोई छाया-सी डोल रही हो।

मकान के भीतर चीज़ें इतनी कम हैं और जो हैं, इस प्रकार की हैं कि उन से अमीना की मौजूदगी या उस के पत्नीत्व का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। दीवारों पर कुछ-एक चित्र हैं, जिन में अधिकतर बहुत पुराने हैं। और कोनों में कुछ मूर्तियाँ हैं, जिन में अधिक पत्थर की हैं। दरवाज़े हमेशा खुले रहते हैं और उन पर पर्दे नहीं हैं। मेरे दोस्त को पर्दों से नफ़रत है। बरामदे में सफ़ेद बेंत की चार कुर्सियाँ हैं और उन के बीच एक बड़ी-सी मेज़, जिस के पैर पत्थर के हैं। इस

मेज़ के चारों किनारों पर चार कँटीले और अलिफ़ की तरह सीधे कैक्टस रखे रहते हैं। उन्हें देख कर ऐसा लगता है, जैसे किसी रोज़ अमीना ने या मेरे दोस्त ने अपने किन्हीं चार मेहमानों को फूँक मार कर यह शक़्ल दे दी हो। सारे मकान में गृहस्थी का एक दाग़ तक दिखायी नहीं देता। महसूस होता है कि कुछ ही दिनों का क़याम हो और वह भी किसी पहाड़ी डाक बँगले में।

कभी-कभी अमीना इन मूर्तियों के सामने कुछ फूल और पत्तियाँ बिखेर देती है और बरामदे वाली मेज़ पर अगरबत्ती जला कर रख देती है। और मकान एकदम किसी बियाबान में बने छोटे से मन्दिर सा दिखायी देने लगता है। हम दोनों को अमीना की यह शरारत बहुत प्यारी लगती है।

कल शाम उन मूर्तियों के सामने कुछ पीले-पीले पत्ते देख कर अच्छा नहीं लगा। पत्ते पाँवों के नीचे आ-आ कर चुरमुरा रहे थे। वैसे भी सारे मकान पर नहूसत-सी बरस रही थी। मैं ने अपने दोस्त की ओर देखा, जैसे इस सब का कारण पूछना चाहता होऊँ। वह दूसरी ओर देख रहा था। जी में आया कि उसी समय उन पत्तों को समेट कर बाहर फेंक दूँ। उन पत्तों को देख कर यकायक अमीना के लिए दिल बहुत उदास हो गया था। जिस कमरे में हम खड़े थे, उस के एक कोने में अमीना की किताबें हुआ करती थीं और दूसरे में उस के कुछ कपड़े एक पालने में पड़े रहते थे। अब वे दोनों कोने ख़ाली पड़े थे। यह पालना न जाने किस लिए वहाँ रखा रहता है, जब आता हूँ, नया-नया-सा दिखायी देता है। मैं ने फिर अपने दोस्त की ओर देखा। वह सामने की दीवार पर टँगी बेगम की तसवीर की ओर देख रहा था। यह तसवीर पहले तो किसी दूसरे कमरे में हुआ करती थी, अगर माली उसी समय अन्दर न आ गया होता तो मैं ने शायद कुछ कहा होता,

कुछ पूछा होता। अपने दोस्त को उस चित्र की ओर देखता पा कर अजीब-अजीब से विचार मन में उठे थे। अब वे सब ठीक याद भी नहीं।

अगर मुझे पता होता कि अमीना कहीं गयी हुई है, तो मैं कुछ दिन बाद आता।

लेकिन इस बार तो वैसे ही बड़ी मुद्दत बाद आया हूँ। जब कभी अपने काम से फ़ुरसत मिलती है, तो बेधड़क यहाँ चला आता हूँ। जब यहाँ नहीं होता, भटकने की-सी कैफ़ियत रहती है। यहाँ आ कर एक प्रकार का सुकून-सा मिल जाता है। शुरू-शुरू में कुछ संकोच हुआ करता था। मेरे मन में तरह-तरह के संशय उठते रहते थे। ख़याल आता था कि मेरी मौजूदग़ी से इन दोनों की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती होगी। उन दिनों कई बार यह ख़याल भी आया कि मेरा दोस्त कहीं कुछ और न सोचने लगे। इस ख़याल के आने से कई बार अपनी नीयत पर भी शक-सा होने लगता था। अब वह बात नहीं रही।

कल वापस लौट जाऊँगा। सलीमा मेरा इन्तज़ार कर रही होगी। अगर वह बुलाता नहीं तो शायद कुछ दिन और वहीं लग जाते। न जाने उस ने किस लिए बुलाया है। चाहता हूँ कि कि वह अपनी बात जल्दी से कह दे। रात को फिर बात नहीं सकेगी। कल सुबह का गाड़ी से चल दूँगा। लेकिन वह अभी तक ऐसे बैठा है, जैसे कोई बात न हो। आबशार की ओर देख रहा है। अब उस की आवाज़ के साथ परिन्दों की चूँ-चूँ भी मिलने लगी है। आकाश गहरा होता जा रहा है। कुछ देर बाद अँधेरा उतर आयगा। सामने बरामदे में बेंत की कुर्सियाँ चमक रही हैं। वहाँ अभी से काफ़ी अँधेरा छा गया है। अमीना होती, तो बरामदे की बत्ती अब तक जला दी गयी होती। माली न जाने कहाँ गया हुआ है। इस समय तक कुछ बत्तियाँ जला

दी जाती हैं। यद्यपि उन सब पर इतने बड़े-बड़े शेड चढ़े हुए हैं कि उन की रोशनी घुटी-घुटी-सी रहती है।

अमीना ने एक बार ये शेड बदल डालने की बात कही थी। इस पर मेरे दोस्त ने उस की ओर ऐसे विनीत भाव से देखा कि वह हँस कर बोल उठी थी, 'अच्छा बाबा, नहीं बदलूँगी।' मैं ने कहा था कि कम-से-कम एक बल्ब तो नंगा रखना ही चाहिए। मेरे दोस्त ने कुछ नहीं कहा था और अमीना मुस्कराती रही थी, जैसे कह रही हो मैं इस बारे में अब कुछ नहीं कहूँगी। उस रोज़ मुझे उन के पति-पत्नी होने का किंचित कड़वा-सा आभास हुआ था। महसूस हुआ था कि सारे सामीप्य के बावजूद एक व्यवधान है, जो मुझ में और इन दोनों में बना रहेगा। एक विकृत-सी इच्छा हुई थी कि उन दोनों के बीच, कभी मेरे सामने तेज़-तेज़ बातें हों।

मुझे वे पति-पत्नी बिलकुल अच्छे नहीं लगते थे। दूसरों के होते हमेशा आपस में मीठी-मीठी बातें करते रहें, एक-दूसरे की हर बात को टेक-सी देते रहें। ऐसे लोगों को देख कर उन के प्रति दुश्मनी की भावना मन में उठ खड़ी होती है। जी चाहता है कि कोई ऐसा अवसर मिले कि कहीं छिप कर उन के झगड़े सुनूँ।

ऐसी बात नहीं कि अमीना ने कभी मेरे सामने मेरे दोस्त की किसी बात या विचार का विरोध न किया हो। लेकिन फिर भी उस की कोशिश यही होती है कि कहीं मेरे दोस्त को कोई चोट न लगे। शुरू-शुरू में मुझे यह बहुत खलता था। एक बार मैं ने उस से कहा भी था। मैं ने कहा था, 'तुम जिसे नाज़ुक शीशा समझती हो, उस में पत्थर की सख़्ती भी है।' मैं ने बड़े आवेश में आकर कहा होगा। किन्तु वह सिर्फ़ मुस्करा दी थी, जैसे मेरी बात भी समझ गयी हो, लेकिन अपनी बात को रद्द करने के लिए तैयार भी न हो।

जब कभी मेरा दोस्त और मैं किसी बहस में उलझे हुए हों, हालाँकि ऐसा बहुत कम होता है तो अमीना हमारी बातों को बड़े ध्यान से सुनती रहती है। वह कभी हमारी बातों में दखल नहीं देती। लेकिन उस के होने से ऐसा महसूस होता रहता है कि कोई हमारे तर्कों को निरपेक्ष ढंग से तौल या परख रहा है। इस तोल या परख के निष्कर्ष जानने के कौतूहल को मैं ने हमेशा दबाये रखा है। शायद डरता हूँ कि कहीं निरपेक्षता वाली बात महज़ भ्रम ही न निकले अपने दोस्त से बहस करते समय भूल जाता हूँ कि अमीना उस की बीवी है।

इन सब बातों की ओर इस समय व जाने क्यों बार-बार लौट रहा हूँ।

अगर मेरे दोस्त ने अपने किसी पत्र में संकेत-मात्र भी दे दिया होता होता कि अमीना यहाँ नहीं है तो मैं हरगिज़ यहाँ नहीं आता। कुछ दिन बाद आता। शायद सलीमा को ले कर ही आता। फिर यदि अमीना न भी रहती, तो वातावरण इतना तना-तना-सा न होता। और वैसे भी सलीमा यहाँ आकर बिलकुल अमीना की-सी दिखायी देने लगती। दोनों में बहुत समानता है।

अब यह चुप्पी बहुत बोझिल होती जा रही है। थोड़ी ही देर में अँधेरा छा जायगा। अँधेरे में चुप बैठने से मेरा गला भर आता है। लेकिन आज अँधेरा इतना गहरा नहीं होगा। ऊपर काफ़ी बड़ा-सा चाँद निकल आया है। इस समय बहुत फीका-फीका दिखायी दे रहा है। चाँदनी में आबशार खिल उठेगी। लेकिन चाँदनी की कल्पना से भी अँधेरे का भय दूर नहीं होता। लगता है, चाँदनी अँधेरे में गुम हो जायगी।

एक क्षण के लिए हमारी निगाहें आपस में टकराती हैं। मेरे होंठों पर एक क्षीण-सी मुस्कराहट उभरती है। किन्तु यह मुझ से कहीं बहुत

दूर पर है। उस की आँखों में पहचान की कोई चमक पैदा नहीं होती। न जाने वह इस समय कहाँ है। जी चाहता है, उठ कर उसे झकझोर दूँ। लेकिन आदत कुछ ऐसी है कि अक्सर दिल की बात दिल में ही दबी रहती है।

कल शाम यहाँ पहुँचते ही अमीना के बारे में पूछना चाहा था। उसे स्टेशन पर अकेला देख कर हैरानी हुई थी। फिर सोचा था, अमीना शायद बीमार होगी। इसीलिए मुझे बुलाया होगा। फिर चुपके से इस विचार को दबा दिया था। और रास्ते-भर हम दोनों ख़ामोश रहे थे। कुछ बहुत ही मामूली और उड़ती-उड़ती-सी बातें ज़रूर हुई थीं। मैं ने पूछा था, 'आजकल क्या कर रहे हो ?' उस ने जवाब दिया था, 'कुछ नहीं।' उस ने पूछा था, 'तुम ?' मैं ने कन्धे सिकोड़ दिये थे। ऐसा लगा था, हम दोनों ने अपने-अपने कामों को दो प्रतीकों द्वारा व्यक्त कर दिया हो।

मैं उस के पत्रों के बारे सोच रहा था। एक के बाद एक पाँच पत्र उस ने लिखे थे। सभी पत्रों में एक ही वाक्य था, 'अगर आ सको, तो एक-दो दिन के लिए चले आओ।'

पत्र दो टूक होने चाहिएँ। जवानी में हम एक-दूसरे को बहुत लम्बे लम्बे पत्र लिखा करते थे। और जब मिलते थे, तो उन पत्रों में लिखी सभी बातों से शर्म आती रहती थी। हर नये अनुभव का, हर स्थान का, हर नये परिचित का सविस्तार निरीक्षण उन पत्रों में होता था कई बार किसी अंग्रेजी कविता की पंक्तियाँ उन में जड़ी होती थीं। मेरे पास उस के पुराने पत्रों का एक पुलिन्दा अब भी पड़ा है। कई बार उन्हें जला डालने का विचार मन में उठ चुका है। पिछले तीन-चार बरसों में उस ने मुझे सिर्फ़ एक लम्बा पत्रा लिखा है। उसे पढ़ कर पुराने दिनों की याद ताज़ा हो गयी थी। लेकिन उस का विषय बहुत ठोस था। अमीना

से शादी कर लेने के कुछ ही दिन बाद वह पत्र लिखा गया था। उसे पढ़ कर यों महसूस हुआ था, जैसे एक बहुत लम्बी यात्रा पूरी कर लेने के बाद कोई आराम कर रहा हो, उस यात्रा की कठिनाइयों पर एक विहंगम दृष्टि भी डाल रहा हो और साथ ही यात्रा के अन्त से किंचित असन्तुष्ट और सहमा-सहमा-सा भी हो।

यदि मैं उस की आदत से वाक़िफ़ न होता, तो उस के पत्रों को पढ़ कर बेचैन हो जाता, क्योंकि उन-सब में एक ही सतर थी, 'अगर आ सको, तो एक-दो दिन के लिए आ जाओ।' मैं ने अपने आने की सूचना केवल उस के आख़िरी पत्र के जवाब में दी थी, जब सलीमा से सब तै हो चुका था।

मकान पर पहुँच कर भी जब अमीना दिखायी नहीं दी, तो मैं ने समझा था कि शायद इसीलिए मुझे बुलवाया होगा। अमीना के चले जाने से मकान सूना हो गया होगा, मेरा दोस्त उदास हो गया होगा और उस ने मुझे बुलवा लिया होगा। यह स्वयं चला आता, लेकिन बम्बई से उसे बहुत पुरानी नफ़रत है। जब से उस ने यह मकान ख़रीदा है, वह बम्बई एक बार भी नहीं आया। मेरा अपना दिल वहाँ से बहुत बेज़ार हो चुका है अब इरादा है, साल में दो-एक महीने यहाँ आ कर रहा करूँगा। सलीमा से बात हुई थी। उसे भी यह तजवीज़ पसन्द है। मकान की बग़ल में एक छोटी-सी झोपड़ी है। ख़ाली पड़ी रहती है। उसे ठीक करवाया जा सकता है। जाने से पहले उस के बारे में बात करूँगा। वह शायद पूछे कि अलग रहने की क्या ज़रूरत आ पड़ी! फिर तो बताना ही पड़ेगा। लेकिन बताने से डर लगता है। कुछ वहम सा बना हुआ है कि बता दूँगा, तो बात आख़िर तक नहीं पहुँचेगी, कोई विघ्न आ पड़ेगा।

रात जब हम खाना खाने बैठे थे, तो कुछ बातें खाने के बारे में

हुई थीं। खाना होटल से मंगवाया गया था। मैं ने पूछा था, 'माली ने क्यों नहीं पकाया ?' उस ने कहा था, 'वह अच्छा नहीं पकाता, पहले अमीना देख लिया करती थी, उसी के जाने के बाद उस से वैसा खाना बना ही नहीं।' जो खाना हम खा रहे थे, वह भी ख़राब था। अमीना का नाम लेने के बाद मेरा दोस्त एकदम फिर ख़ामोश हो गया था। हम बरामदे वाली मेज़ पर बैठे थे। माली खाना लगा कर चला गया था। अमीना की कुर्सी खाली पड़ी थी। मेरी निगाहें बार-बार उस कुर्सी की ओर उठ रही थीं। अगर अमीना वहाँ बैठी होती, तो मैं इतनी बार उस ओर न देख पाता। मेरा दोस्त हमेशा उस के साथ वाली कुर्सी पर बैठता है। अब भी वहीं बैठा था। उस के सामने वह दीवार है, जहाँ पहले उस बेगम की तसवीर हुआ करती थी। खाना खाते-खाते वह कई बार उस तसवीर की ओर देखा करता था, वैसे ही, जैसे कुछ लोग बातें करते-करते अपने हाथों की ओर देखते रहते हैं।

खाना बहुत जल्द ख़त्म हो गया था। मैं सोच ही रहा था कि अब अमीना के बारे में पूछ लूँ तो ठीक है। खाने के बाद वह सीधा अपने कमरे में चला जायगा। दरअसल रात को इस मकान में कोई बात करने को जी नहीं चाहता। अमीना के रहते भी रात को बहुत कम बातें होती हैं। खाना खा लेने के बाद तो कोई मुँह ही नहीं खोलता, जैसे सारे दिन का अन्त वहीं पर हो जाता है। रात को धीमी-धीमी आवाज़ भी गूँज-सी पैदा कर देती है। हर वाक्य कितनी-कितनी देर तक वहीं भटकता रहता है। और साथ ही एक अजीब-सा खटका बना रहता है कि चारों ओर बसे अँधेरे में कोई छिपा बैठा हमारी सब बातें सुन रहा होगा।

इस खटके के बावजूद भी मैं चुप न रह सका। वह खड़ा एक कैक्टस की ओर देख रहा था। मैं ने कहा, 'अमीना कहाँ है ?' उस

ने जवाब दिया, 'कहीं गयी हुई है।' यह कहते-कहते वह अपने कमरे की ओर चल दिया। मैं काफ़ी देर तक वहीं बैठा रहा; मेज़ पर सर झुकाये, हाथ घुटनों पर बाँधे, मानो कोई प्रार्थना कर रहा होऊँ। जितनी देर बैठा रहा, कानों में अपना और अपने दोस्त का वाक्य बारी-बारी सुनायी देता रहा। बहुत देर तक नींद नहीं आयी। फिर मैं ने मूर्तियों के सामने बिखरे उन पीले पत्तों को समेट कर बाहर फेंक दिया।

सुबह को और आज सारा दिन हमारे बीच कोई बात नहीं हुई। दिन-भर मैं कुछ झल्लाया-सा रहा हूँ। किन्तु इस समय यह झल्लाहट बहुत बेमानी लग रही है। बुलाने के लिए किसी विशेष बात का होना और मिलने के बाद किसी विशेष बात का करना लाज़िमी नहीं। कई बार किसी अन्तरंग के साथ चुपचाप बैठ भर लेने से ही दिल को क़रार आ जाता है। लेकिन....यह लेकिन न जाने क्यों हर बात के साथ चिपका रहता है।

एक बार, याद नहीं, क्या बात हो रही थी कि उस ने कहा था कि अमीना से भी उस का एकाकीपन दूर नहीं हुआ। सुन कर बहुत हैरानी हुई थी। कहने का अन्दाज़ कुछ ऐसा था, मानो उसे इस अपूर्ति पर खेद न हो कर ख़ुशी ही महसूस हो रही हो, जैसे वह अपनी किसी विजय का ज़िक्र कर रहा हो। मेरा ख़याल था कि अमीना से शादी कर लेने की प्रेरणा उसे इसी शून्य को भरने की इच्छा से मिली होगी, जो उस के और मेरे व्यक्तित्व को बरसों से निगलता चला आया है। उन की शादी की ख़बर पा कर मुझे एक धक्का तो ज़रूर लगा था, किन्तु साथ ही एक आशा भी बँधी थी। लगा था, जैसे मेरे अपने अभावों की पूर्ति भी उन्हीं के माध्यम से हो जायगी। अमीना को क़रीब से देख लेने के बाद यह आशा और भी पुष्ट हो गयी थी।

वह किसी चिर-संचित आदर्श को छूती हुई दिखायी दी थी।

हो सकता है, एकाकीपन वाली बात मेरे दोस्त ने यों ही कह दी हो, मुझे टटोलने या ढाढ़स देने के लिए। यह बात उन की शादी के कुछ दिन ही दिन बाद कही गयी थी। तब मैं इस मकान में पहली बार आया था। उस बार मेरे दोस्त ने और भी ऐसी कई बातें की थीं, जिन से मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ था, कि वह मुझ पर दया कर रहा हो, अपनी उपलब्धि पर पर्दा-सा डाल रहा हो, ताकि मेरी ईर्ष्या कुछ कम हो जाय। मुझे वह बहुत अरुचिकर लगा था। अपनी अपनी अवस्था बहुत दीन जान पड़ी थी।

सम्भव है, इसी कसक को दूर करने के उद्देश्य से मैं सलीमा से शादी करने जा रहा हूँ। अपने दोस्त की शादी से पहले शादी के बारे में मेरे विचार और भय वही थे, जो उस के हुआ करते थे।

अब पिछले तीन वर्षों में शादी की बात कई बार उठ चुकी है, मन में भी और वैसे भी। किन्तु हर बार बाल-भर का फ़र्क़ रह जाता रहा है। इस उम्र के तक़ाज़े कुछ दूसरे प्रकार के हैं और मजबूरियाँ भी। वलवलों की संख्या और तीव्रता बहुत कम हो गयी है और खतरों का भय बहुत बढ़ गया है। आँखें मूँद कर कूद पड़ने की हिम्मत अब रही नहीं। आँखें मूँद लेना भी कुछ मुश्किल ही हो गया है। किसी ओर चकाचौंध रोशनी दिखायी नहीं देती। अपनी उम्र के लोगों की शादी की बात सुन कर दिल बैठने-सा लगता है। महसूस होता है, कोई चेतावनी मिल गयी हो।

इस दोस्त पर शादी का असर न जाने क्यों दूसरी क़िस्म का हुआ था। एक तमन्ना ने धीरे-धीरे दिल में बसना शुरू कर दिया था। दिल एक बार फिर धड़क उठा था। अमीना जैसी ही कोई औरत हो, सुन्दर और असुन्दर की सीमा-रेखा से बहुत ऊपर, सुलझी हुई, हर बात

पर खामोशी से मुस्करा देने वाली, हर स्थिति में जँच-सी जाने वाली, कुछ-कुछ उदास, कुछ औरत और कुछ लड़की।

बहुत इन्तज़ार करने के बाद फिर सहसा महसूस होने लगा कि ऐसा होना असम्भव है। ज़िन्दगी में दो व्यक्तियों को हूबहू एक-से अवसर कभी नहीं मिलते। किसी का पीछा करना, इस खयाल से कि जहाँ वह वह पहुँच जायगा, वहीं आप भी पहुँच जायँगे, मूर्खता की निशानी है। यह सोच-कर कुछ अफ़सोस तो ज़रूर हुआ, लेकिन दिल ने जाने-अनजाने हर औरत से लिहाज़ बरतना शुरू कर दिया। दिमाग़ ने छान-बीन करनी छोड़ दी। हालत एकदम ऐसी नाज़ुक होने लगी कि अब जो कोई भी पहले ज़द में आ गया, उसी को सिर-आँखों पर बैठा लूँगा, फिर सर चाहे सारी उम्र फटता और आँखें जलती ही क्यों न रहें। यह परिवर्तन कुछ इस तेज़ी से हुआ कि बड़ी उम्र के लोगों की शादी की बात कुछ समझ में आने लगी।

मजबूरी के उस दौर में कोई भी ग़लत क़दम उठा सकता था। इत्तफ़ाक़ की बात है कि बच गया हूँ, नहीं दिल और दिमाग़ की कमज़ोरियाँ न जाने किस खाई में उठा फेंकतीं।

सलीमा को देखते ही एक प्रकार का आश्वासन-सा मिल गया था अपनी तमाम विवेचनात्मक शक्तियों के प्रयोग के बाद भी वह आश्वासन बना रहा। उसे देख कर ऐसा प्रतीत हुआ था कि जवानी की उच्छृङ्खलता तो बीत चुकी हो, किन्तु उस की मादकता बाक़ी रह गयी हो। सब उबाल हो लिये हों, शोलों का स्थान एक स्निग्ध-सी आँच ने ले लिया हो, जिस में से चिंगारियों की बजाय हल्क-हल्की-सी और देर तक रहने वाली हरारत फूट रही हो।

दो-एक मुलाक़ातों के बाद ही हमारी बातों का स्तर अजनबीयत से उठ कर आत्मीयता तक आ गया था। यह स्थिति जवानी में शायद

महीनों के सम्पर्क के बाद भी न आ पाती। ग़लत बात है कि जवानी में आदमी हर काम जल्दबाज़ी से करता है। जवानी में फ़ुरसत की ज़्यादती के कारण हर इन्सान प्रायः धीरे-धीरे चहल क़दमी करता हुआ चलता है।

सलीमा को अपने वालदैन से पूछना था। उन्होंने सहज रस्म पूरी करने के लिए एक-दो बार मना ज़रूर किया था और फिर इजाज़त दे दी थी। वे यदि इन्कार कर देते, तो रंज-सा बना रहता। बातों-ही-बातों में यह भी तै हो गया था कि शादी के बाद सलीमा सलीमा ही रहेगी, याने हमारे मज़हबों में कोई तबदीली नहीं होगी।

अपने इस फ़ैसले को याद कर के बहुत ख़ुशी होती है। इसलिए नहीं कि सलीमा या मैं मज़हब के बहुत पाबन्द हैं और न ही इसलिए कि इस प्रकार की शादी दोस्तों के हलके में एक खबर की हैसियत रखेगी। ख़ुशी इस बात की है कि हमारे बीच यह सवाल ही नहीं उठा कि शादी पर मज़हब की कोई क़ैद भी हो सकती है। मेरे दोस्त और अमीना के बीच भी यह सवाल नहीं उठा था।

यहाँ आने से पहले एक पूरी शाम हम ने समुद्र के किनारे ग़ुज़ारी थी। बातें बहुत कम हुई थीं। ऐसा लग रहा था कि हम समुद्र के बदले इस छोटी-सी आबशार का दामन पकड़े खड़े हों। समुद्र बहुत छोटा-सा अनुभव हो रहा था। मैं ने अपने दोस्त और अमीना की बात छेड़ दी थी। वह शायद किसी और ख़याल में खोयी हुई थी। सुन कर चौंक-सी पड़ी थी। मैं ने कहा था, उस की बहुत-सी बातें अमीना से मिलती-जुलती हैं। आँखें बन्द करके कल्पना करने की कोशिश की थी कि वे बातें कौन-कौन सी हैं। किसी विशेष बात पर नज़र जमी नहीं थी। उस ने अमीना से मिलने की ख्वाहिश ज़ाहिर की थी। मैं ने कहा था कि शादी के बाद हम कुछ दिन इसी मकान में आ कर

रहेंगे। मकान की बात सुनते-सुनते वह क़दरे उदास हो गयी थी। मुझे उस की उदासी बहुत प्यारी लगी थी।

शायद सलीमा और अमीना में सब से बड़ी समानता यही उदासी है।

मुझे उदास औरतें बहुत भाती हैं, कारण कुछ भी हो। अमीना के चेहरे पर हमेशा एक भीनी-भीनी-सी उदासी छायी रहती है, जिसे देख कर ज़िन्दगी के सारे दर्द एक साथ सचेत हो उठते हैं।

आबशार की बात सुन कर वह धीरे से मुस्करा दी थी। इस मुस्कराहट के प्रकाश में उस की उदासी और साफ़ हो गयी थी। उस ने पूछा था, 'पानी कहाँ से आता है, कितनी ऊँचाई से गिरता है, आवाज़ रात को बहुत तेज़ हो जाती होगी, कभी-कभी ऐसा लगता होगा कि समुद्र ने ही अपनी आवाज़ को कम कर दिया हो। उस आवाज़ को सुनते-सुनते आप का गला नहीं भर आता?' बोलते-बोलते उस की साँस तेज़ हो गयी थी। फिर उस ने कहा था कि, 'आज रात मुझे शायद उस आबशार का कोई ख़ाब आया।' मुझे बहुत अच्छा लगा था कि उस ने मेरे दोस्त और अमीना के बारे में इतनी कम बातें की थीं और आबशार के बारे में इतनी ज़्यादा।

जुदा होने से पहले मैं ने हौले से यहाँ आने की बात छेड़ दी थी। कहा था, 'अगर इजाज़त दो, तो एक-दो दिन के लिए हो आऊँ, उस के बहुत-से पत्र आ चुके हैं।' उस ने सहज ही कह दिया था, 'इस में इजाज़त की क्या ज़रूरत है। आप लौटेंगे तो किसी रोज़ रसूमात भी पूरी कर लेंगे, अब जल्दी ही किस बात की है।' विवाहित जीवन के कुछ-एक बन्धनों से मैं बहुत घबराता हूँ। किसी से मिलने जाना हो या कुछ करना हो, आप बग़ैर बीवी की इजाज़त या डर के कर ही नहीं सकते। आशा हुई थी कि सलीमा मुझे बाँधने को कोशिश नहीं करेगी।

वापस जा कर उसे इस आबशार के बारे में और भी बहुत-सी बातें बताऊँगा। अमीना की अनुपस्थिति और अपने दोस्त की ख़ामोशी का ज़िक्र भी शायद करूँ। और उन कैक्टसों का भी, जिन के बारे में उस रोज़ कुछ नहीं कहा था। जाते ही ·इस सारी फ़िज़ा की तस्वीर-सी खींचकर रख दूँगा।

अब थोड़ी ही देर में पेड़ों पर और घास में जुगनू टिमटिमाने लगेंगे। इस समय परिन्दों की चूँ-चूँ से आबशार की आवाज़ में बुलबुले पैदा हो रहे हैं। शीघ्र ही ये बुलबुले दब जायँगे। आकाश यों दिखायी दे रहा है, जैसे नीले पानी की कोई झील उलट गयी हो। चाँद है, किन्तु दो-एक टुकड़े बादल के भी हैं। अगर इन टुकड़ों ने फैल कर चाँद को अपने काबू में कर लिया, तो अँधेरा बढ़ जायगा।

मेरा दोस्त उसी तरह गुमसुम बैठा है। अब उस का चेहरा साफ़ दिखायी नहीं देता। उस ने सिग्रेट सुलगा रखा है टुकर-टुकुर आबशार से ऊपर उन सुरमई पहाड़ियों की ओर देख रहा है, जो अँधेरे के साथ-साथ हमारे क़रीब सरकती आ रही हैं। अभी ऐसा लग रहा है कि हम चारों ओर से घिर गये हों। बादल का एक टुकड़ा चाँद से चिपक गया है।

अमीना भी सिग्रेट पीती है, कभी-कभी उस के होंठों में सिग्रेट देख कर मेरे जिस्म में एक अजीब-सी कसमसाहट होने लगती है। जी चाहता है, आगे बढ़ कर उस का सिग्रेट छीन लूँ या उसे अपनी बाहों में इस ज़ोर से खींच लूँ कि उस का दम निकल जाय। एक बार अपने दोस्त की ग़ैरहाज़िरी में मैं ने मज़ाक़ में उस से यह बात कह दी थी। उस ने मुस्करा कर एक सिग्रेट उठा लिया था। मेरे जिस्म में एक लहर-सी दौड़ गयी थी। उस ने सिग्रेट फिर मेज़ पर रख दिया था। मुझे ऐसा लगा था, जैसे किसी ने मुझे कोई छोटी-सी चोरी करते पकड़ लिया हो।

मैं सलीमा से भी यह बात कर चुका हूँ। मैं ने उसे बताया था, 'किसी ख़ूबसूरत औरत को सिग्रेट पीता देख कर मैं अन्धा हो जाता हूँ।' उस ने कहा था, 'शादी के बाद पी कर देखूँगी।' और फिर वह हँसने लगी थी।

अमीना की हँसी भी बहुत सहज है, हालाँकि वह बहुत कम हँसती है। लेकिन हँसती है, तो कुछ ऐसा महसूस होने लगता है, जैसे सामने कोई नर्म-नम-सी चीज़ बिछती चली जा हरी हो।

अगर वह इस समय होती, तो अँधेरा इतना न होता। रात को इस मकान में अमीना न हो, तो नज़दीक से भी यह उजड़ा हुआ नज़र आता है।

बरामदे की बत्ती अभी तक नहीं जली सफ़ेद कुर्सियाँ चमक रही हैं। कैक्टस ओझल हो गये हैं। माली की झोंपड़ी में भी अँधेरा है। वह न जाने इतनी देर से कहाँ गया हुआ है। जब से अँधेरा बढ़ गया है, मेरा दोस्त लगातार सिग्रेट पी रहा है। सिग्रेट की लौ में मैं उस के चेहरे की चादर के पीछे झाँकना चाहता हूँ। अचानक ऐसा लगता है, जैसे वह किसी चीज़ का मातम कर रहा हो।

होस्टल में रहते थे, तो भी कई बार ऐसा ही महसूस होने लगता था। अकारण उदास हो जाया करते थे। फिर यह उदासी कई दिनों तक रहती थी। आधी-आधी रात तक सड़कें नापते रहते थे। बात ज़्यादा नहीं होती थी, लेकिन एक जगह टिक कर बैठना असम्भव हो जाता था।

अजीब बात है, जब तक अँधेरा नहीं था, मुझे उस की ख़ामोशी में कोई विशेष रहस्य दिखायी नहीं दिया था। तरह-तरह के अनुमान उठे थे, किन्तु ऐसा तो एक बार भी नहीं लगा था, जैसा कि अब लग रहा है। अँधेरे ने मानो मेरे दोस्त की मनःस्थिति पर एक अजीब-सा प्रकाश

डाल दिया हो। कुछ देर इसी तरह खामोश बैठ रहे, तो वह न जाने क्या करने लगे। इस समय वह बहुत छोटा-सा नज़र आ रहा है। अभी तक उसे मेरी मौजूदगी का एहसास था। अब वह ऐसे बैठा है, जैसे बिल्कुल अकेला हो, नहीं तो उस का चेहरा इस क़दर शफ़्फ़ाफ़ न हो जाता। वह तो हर बात को छिपा कर रखने का आदी है।

मैं अचानक बोल उठता हूँ।

"अगर अमीना होती, तो हम इस समय बरामदे में बैठे खाना खा रहे होते।"

वह कुछ नहीं कहता।

"तुम कुछ कहते क्यों नहीं?"

वह अपना चेहरा छिपा लेता है, हाथों से नहीं, वैसे ही।

"चलो, अन्दर चलें।"

मैं उठ खड़ा होता हूँ। वह मेरी ओर देखता है। किन्तु उस की आँखों से कुछ नहीं झलकता।

"तुम्हें शायद भूख लग आयी है?"

उस की आवाज़, जैसे एक छोटी-सी लाश हमारे बीच आ गिरी हो। मैं फिर बैठ जाता हूँ। उस का चेहरा फिर कुछ व्यक्त करने लगा है।

"अमीना कब लौटेगी?"

वह सिग्रेट फेंक कर उठ खड़ा होता है। अब वह सीधा मेरी ओर देख रहा है। चाँद अब भी बादलों के नीचे दबा हुआ है। एकदम उठ खड़े होने से सिर में चक्कर-से आने लगे हैं। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है। मैं अपना प्रश्न भूल जाता हूँ। हम धीरे-धीरे बरामदे की ओर चल देते हैं।

"माली कहाँ चला गया है?"

"होटल से खाना लेने गया होगा।"

हम बरामदे की सीढ़ियों के पास पहुँच कर रुक जाते हैं।

"मैं कल सुबह वापस चला जाऊँगा।"

"कुछ काम है?"

"कुछ दिन बाद फिर आऊँगा।"

"अमीना तो तब भी यहाँ नहीं होगी।"

मैं अपने दोस्त की यह चोट चुपचाप सह लेता हूँ।

"कब लौटेगी? गयी क्यों है?"

"लौटेगी नहीं। गयी क्यों है, यही तो मैं तुम से पूछना चाहता था।"

"लौटेगी नहीं? क्यों?"

"उस ने ऐसा ही कहा था। और...."

वह एक लम्बी साँस ले कर चुप हो जाता है।

माली ने बरामदे की सारी बत्तियाँ जला दी हैं।

मैं चाहता हूँ कि हम वापस उसी स्थान पर जा बैठें, जहाँ से वह आबशार फिर दिखायी दे रही होगी, चाँद बादलों के पंजे से बाहर निकल आया है।

माली हमारा खाना लगा रहा है।

हम एक-दूसरे की ओर एक बार देख कर बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ने लगते हैं। हमारे साये हमारे साथ-साथ चल रहे हैं।

खाने की मेज़ पर बैठते हुए मुझे लगता है, जैसे हम क़ब्रिस्तान के दो भूत हों।

कल सलीमा को दो शब्द लिख दूँगा।

★

जामुन की गुठली

बस-स्टेण्ड वीरान पड़ा था। सामने सड़क के किनारे क्वार्टरों की लम्बी पंक्ति धधकती धूप के कोड़े खाते-खाते सो गयी थी। मेरे सिर के ऊपर का छप्पर शायद यह सोच रहा था कि अगर किसी को बस का इन्तजार नहीं करना था, तो मुझे क्यों धूप में खड़ा किया गया है।

मैं ने घड़ी की तरफ़ देखा। अभी सवा बजा था। मुझे शक हुआ, शायद घड़ी नयी ट्यूशन से घबरा कर बन्द हो गयी हो। मगर कान से लगाया, तो बदस्तूर सिसक रही थी। मैं ने आदत के मुताबिक उस की चाबी पूरी भर दी और सोचा, इस तरह तो घड़ी बहुत जल्द खराब हो जायगी।

पसीने की एक बूँद मेरी लम्बी नाक की नोक पर आ कर एक क्षण के लिए रुकी और फिर नीचे ढुलक गयी और फिर उस के बाद दूसरी और फिर तीसरी। कुछ देर तो मैं कोशिश करता रहा कि वे एक ही जगह गिरें, लेकिन फिर एकदम घबरा कर रूमाल जेब से निकाला और चेहरे और गरदन को बेतहाशा पोंछना शुरू कर दिया। रूमाल भीग गया। मेरे होंठ खुश्क हो रहे थे। अगर रूमाल से पसीने

की बू न आ रही होती, तो शायद मैं उसे अपने मुँह में निचोड़ लेता।

मैं छप्पर के नीचे खड़ा था, गो महसूस यों हो रहा था कि छप्पर मेरे नीचे खड़ा हो। जी में आया, सामने से किसी भाई अथवा बहन को बुला कर प्रार्थना करूँ, थोड़ी देर मेरे साथ बातें करें। मैं चाहता था, पास कोई ऐसा आदमी हो, जिस से कह सकूँ, आज-जैसी गर्मी पहले कभी नहीं पड़ी या दिल्ली के बस-सिस्टम की तुलना बम्बई और कलकत्ता के बस-सिस्टम से करते हुए भूल जाऊँ कि मैं बम्बई गया हूँ, न कलकत्ता।

मैं भीगे हुए रूमाल से अपने चेहरे पर बदबू और पसीने के कई लेप दे चुका था। और ट्यूशन वाली लड़की पर और अपने-आप पर कई बार लानत भेज चुका था। लेकिन मुझे फिर भी मालूम था, दो-ढाई से पहले मुझे कोई बस नहीं मिलेगी और मुझे ट्यूशन पर तीन बजे पहुँचना है। फिर मैं इतना पहले क्यों आ गया? मैं अपनी इस बेवकूफ़ी की वजह सोच ही रहा था कि किसी ने कहा, "क्या बजा है जी?"

मैंने मुड़ कर देखते हुए कहा, "एक पच्चीस।"

"अब क्या आयगा कमेटी वाला," उस व्यक्ति ने अपने-आप से कहा और बस-स्टेण्ड के पीछे बने हुए मकानों की तरफ़ चल दिया। उस के यों मुड़ जाने का अन्दाज़ मुझे इस क़दर लापरवाह-सा लगा कि इच्छा हुई दौड़ कर उस का रास्ता रोक लूँ और कहूँ, 'मैं ही हूँ कमेटी वाला!'

थोड़ी ही देर में वह व्यक्ति फिर बस-स्टैण्ड की ओर आता हुआ दिखायी दिया। उस के हाथ में एक तराज़ू था और उस के पीछे एक छोकरा टोकरी उठाये हुए आ रहा था। छप्पर के नीचे पहुँच कर उस ने फिर इधर-उधर देखा और अपने-आप से कहा, "यहाँ लगा लेते हैं।"

मैं सोच रहा था; अब समय ज़ल्दी बीत जायगा।

उस व्यक्ति ने तराज़ू एक ओर रख दिया और उस छोकरे के सिर से टोकरा उतरवाया।

टोकरे में जामुन थे।

"किस क़दर गरमी है आज!" मैं ने जामुम वाले से कहा।

लेकिन जामुन वाला अपने काम में ही मस्त था।

"दूसरा टोकरा भी उठा लाओ," उस ने छोकरे से कहा।

छोकरा भागता हुआ जिधर से आया था, उधर को चला गया और वह टोकरे को एक जगह टिकाने लगा। ज़मीन एक-जैसी न थी और उसे टोकरा एक जगह टिकाने में कुछ कठिनाई पड़ रही थी। वह मुँह-ही-मुँह में बड़बड़ाता जा रहा था। इतने में वह छोकरा दूसरा टोकरा भी उठा लाया। यह पहले टोकरे से बड़ा था। इस बार उस लड़के के साथ एक छोटा लड़का और भी था।

टोकरा उठाये वह जामुन वाले के सिर पर खड़ा था। जामुन वाला पहले टोकरे के नीचे कुछ कंकर आदि रख कर उसे टिकाने की कोशिश में था। छोटा लड़का बड़े से कह रहा था, "मुझे दोगे न?"

लड़का दोनों हाथों से टोकरे को थामे हुए था। उस की बाँहें छोटी थीं, उस के शरीर के नंगे हिस्से की खाल बहुत तनी हुई नज़र आ रही थी। उस व्यक्ति ने दूसरा टोकरा छोकरे के सिर से उतरवाते हुए कहा, "वाह शेर के बच्चे! शाबाश! अब दो टोकरे और है।"

छोकरा फिर वापस दौड़ गया। छोटा लड़का भी कुछ क़दम उस के पीछे चला और फिर वापस लौट कर जामुन वाले के पास खड़ा हो गया। वह सारे बदन से नङ्गा था। वह व्यक्ति दोनों टोकरों को एक हाथ से थामे हुए इधर-उधर किसी ईंट या पत्थर के लिए नज़र दौड़ा रहा था। टोकरों को छोड़ता, तो जामुन लुढ़क आते। उस से कुछ दूर

एक-दो ईंटें पड़ी थीं। मैं ने आगे बढ़ कर कहा, "लाइए, मैं टोकरे पर हाथ रखता हूँ। आप ईंटें उठा लायें।"

उस ने झुके-झुके मेरी ओर देखा और फिर शायद फ़ैसला कर लिया कि एक सेकंड के लिए भी मेरे-जैसे आदमी की देख-रेख में जामुन छोड़ना ठीक नहीं।

"अभी छोकरा आ जाता है, जल्दी क्या है?" उस ने कहा।

छोकरा पहले से ही तीसरा टोकरा सिर पर उठाये आ खड़ा था। यह टोकरा पहले दोनों टोकरों से छोटा था। लड़के ने ख़ुद ही सिर से उतार दिया। उतारने में एक जामुन लुढ़क कर नीचे गिर गया। छोटा लड़का उस की ओर लपका। मगर बड़े ने झट से उठा लिया और साफ़ कर के आहिस्ते से टोकरी में रख दिया। जामुन वाला यह सब देख रहा था।

"सामने से वह ईंटें उठा लाओ," उस ने इस अन्दाज़ में कहा, जैसे उसे जामुन वापस देने की सज़ा दे रहा हो।

लड़का दौड़ा हुआ गया और दोनों हाथों में एक-एक ईंट उठा कर दौड़ता हुआ वापस लौटा। जल्दी में एक ईंट उस के पाँव पर गिर पड़ी, लेकिन उस ने झट से उसे उठा लिया और दौड़ता हुआ टोकरों के पास पहुँच गया।

मैं ने इसी दौरान में अपने रूमाल को हवा में लहरा-लहरा कर सुखा डाला था।

"एक इस टोकरे के नीचे रख दे ज़रा इस तरफ़....हाँ...."

लड़के के जिस पाँव पर ईंट गिरी थी, उस की दो उँगलियों से ख़ून बह रहा था। छोटे लड़के ने उन की तरफ़ इशारा कर के कहा, "वह ख़ून!"

बड़े लड़के ने एक चुटकी मिट्टी जख्म पर डाल दी।

"चौथा टोकरा भी ले आऊँ ?" बड़े लड़के ने ऐसे पूछा, जैसे समझ रहा हो कि चौथे टोकरे की क्या ज़रूरत है, पहले तीन तो खत्म हो जायँ।

"हाँ-हाँ, ले आओ," जामुन वाले ने कहा।

बड़ा लड़का फिर दौड़ता हुआ चल दिया और थोड़ी ही देर में चौथा टोकरा उठाये वापस आता दिखायी दिया। टोकरा शायद ज़्यादा भारी नहीं था, क्योंकि छोकरा दौड़ रहा था, या शायद ज़मीन बहुत गरम थी और उस के पाँव अपने आप से ही उचक-उचक कर पड़ रहे थे। उसे आता देख कर छोटा लड़का उस की तरफ़ दौड़ा और एक जगह ज़रा रुक कर उन्होंने आपस में कोई बात की। बड़े लड़के ने टोकरा छोटे के सिर पर रख दिया और आहिस्ता-आहिस्ता टोकरे को थामे हुए जामुन वाले के नज़दीक आ कर बोला, "यह लो, चौथा टोकरा !"

"यह मैं ने उठाया है," छोटे लड़के ने कहा और उस ने बड़े लड़के की उँगली पकड़ने की कोशिश की, मगर उस ने झपट कर फिर जामुन वाले से पूछा, "और ईंट ले आऊँ ?"

"ईंटें ? अच्छा, ले आओ।" जामुन वाले ने यों कहा, मानो उस लड़के पर कोई एहसान कर रहा हो।

लड़का भी शायद यही समझता था, क्योंकि मंजूरी पाते ही दौड़ता हुआ सड़क के पार के मकानों के पीछे की तरफ़ चला गया। छोटा लड़का जामुन वाले के पास हाथ पीछे बाँधे खड़ा था। जामुन वाला एक टोकरे में काले-काले रस-भरे जामुनों को ऊपर-ऊपर सजा रहा था।

"यह लो ईंटें" बड़ा लड़का चार ईंटें उठाये खड़ा था।

"यहीं रख दो," जामुन वाले ने कहा।

लड़के ने एक-एक कर के ईंटें नीचे रख दीं।

"अगर चार ईंटें और ले आओ, तो बैठने की जगह भी ईंटों से ही बनायी जाय," जामुन वाले ने आहिस्ते से कहा।

"अभी लाया," कह कर लड़का फिर सड़क के पार दौड़ गया।

"मैं भी ईंटें लाऊँ?" छोटे लड़के ने पूछा।

"तुम!" जामुन वाला हँस पड़ा।

मुझे भी हल्की-सी मुस्कराहट आ गयी।

मैं ने रूमाल को फिर पसीने से तर-बतर कर लिया था। और सोच रहा था, यह जामुन वाला रोज़ यहाँ बैठता होगा। इसे यहाँ पर आने वाली बसों के बारे में अवश्य पता होगा। लेकिन यह बतायेगा भी? जाने कितने लोग इस से पूछते होंगे, शायद चिड़चिड़े मज़ाज का हो। इतने में बड़ा लड़का वापस लौट चुका था। मैं ने सोचा, बस से यह लड़का तेज़ है। अब की उस ने छै ईंटें उठा रखी थीं। और जब वह ईंटें नीचे फेंक चुका, तो उस के कंधे पर दो-तीन खराशें थीं और उस की पीठ और पेट पर ईंटों का लाल-लाल पाउडर छिड़का हुआ था।

"यह ईंटें यहाँ जोड़ दूँ?" लड़के ने पूछा।

"हाँ, जोड़ दो।"

"जगह साफ़ कर दूँ पहले?"

"जगह तो साफ़ ही है।"

लेकिन उस लड़के को सफ़ाई शायद बहुत प्यारी थी। बैठ कर हाथों से ही झाड़ू देने लगा। छोटा लड़का भी, जो अभी तक जामुनों को आँखों के द्वारा निगल रहा था, उस के पास बैठ गया, लेकिन दो हाथ मारने के बाद ही उस की हथेली में कुछ चुभ गया और वह वहीं बैठ कर उसे निकालने में व्यस्त हो गया।

"बड़ा अच्छा लड़का है" जामुन वाले ने मुस्करा कर कहा।

"आप का अपना लड़का है ?" मैं ने पूछा।

जामुन वाला हँस पड़ा। मुझे उस की हँसी पसन्द न आयी।

"वाह, बाबूजी ! आप इस का रंग नहीं देखते ?" जामुन वाले को मेरा प्रश्न पसन्द न आया।

लड़के ने ईंटों से जामुन वाले के लिए बैठने की जगह बना दी थी। और जामुन वाला तराज़ू को उठा कर उस पर जा बैठा था। उस ने अपना जूता उतार कर एक टोकरे के नीचे रख दिया और कमीज़ उतार कर कंधे के ऊपर रख ली।

मैं सोच रहा था कि वह सारे कपड़े उतार कर एक लँगोटा बाँध लेगा और हर आने-जाने वाले को पकड़ कर कहेगा, "जामुन लेगा या नहीं ?"

"वह टोकरी ले आऊँ, जिस में बाकी के बट्टे पड़े है ?"

"हाँ हाँ, ले आओ। जानते हो, कहाँ पड़ी है ?....नहीं-नहीं, उसे रहने दो। मैं खुद ले आता हूँ। उस में पैसे पड़े हैं।" जामुन वाले ने मेरी तरफ़ देख कर अपनी एक आँख को मीच लिया।

"तुम यहीं ठहरो। मैं टोकरी ले आऊँ।" जामुन वाले ने बड़े लड़के से कहा।

"मैं भी यहीं ठहरूँगा," छोटे लड़के ने कहा।

आप भी यहीं हैं न ? ज़रा ध्यान रखें, ये हाथ न लगायें जामुनों को आख़िर बच्चे हैं।" जामुन वाले ने जाते-जाते मुझ से कहा।

कुछ कदम पर जाकर उस ने मुड़ कर देखा। बड़ा लड़का, छोटा लड़का और मैं, हम-सब जामुनों से सुरक्षित फ़ासले पर थे। कुछ दूर जा कर उस ने फिर एक नज़र हमारी तरफ़ दौड़ायी और फिर अपने घर की ओर चल दिया।

छोटे लड़के ने बड़े से कहा, "एक जामुन उठा लूँ ?"

बड़े ने डरते-डरते मेरी तरफ़ देखा और कहा, "बाबूजी मारेंगे।" उस का लहजा बता रहा था कि वह पूछ रहा है कि मैं मारूँगा या नहीं।

मैं ख़ामोश रहा।

"मैं उठा रहा हूँ," छोटे लड़के ने हाथ टोकरे के पास ले जा कर कहा।

मैं ख़ामोश रहा। बड़ा लड़का मेरी ओर देख रहा था और छोटा बड़े लड़के की ओर।

"उठा लूँ ?"

"नहीं," बड़े लड़के ने जवाब दिया। अगर वह मुझ से भी पूछते, तो मैं भी यही जवाब देता।

मैं और बड़ा लड़का एक-दूसरे की तरफ़ देख कर मुस्करा दिये।

छोटे लड़के ने टोकरे से हाथ हटा लिया और वहीं पर अकड़ कर बैठ गया।

"हाथ मत लगाना," बड़े लड़के ने जामुन वाले के घर की ओर देखते हुए कहा। जामुन वाला शायद बीवी के साथ बातें करने लगा था। छोटा लड़का उचक-उचक कर जामुनों को देख रहा था, बल्कि सूँघ रहा था। मुझे यों लगा, जैसे वह मुँह से एक-आध जामुन उठा कर खा जाना चाहता हो, मगर बड़े लड़के को जाने क्या हो गया था। कह रहा था, "परे हट के बैठो।"

मैं ने सोचा, उस से कोई बात ही की जाय।

"यह जामुन वाला यहीं पास ही रहता है ?"

"जी, हाँ।"

"तुम इस के पास रहते हो ?"

"जी, हाँ।"

"यह तुम्हारा...."

"अन्नदाता है साहब," छोकरे ने मुस्करा कर कहा।

"तुम्हारे माँ-बाप ?"

"माँ-बाप....माँ—बाप मर चुके हैं।"

मैं ने महसूस किया, छोकरा इस क़िस्म के किसी सवाल का जवाब देना पसन्द नहीं करेगा।

"यहाँ पर बस किस वक़्त आती है ?"

"अजी, बस का भी कोई वक़्त है। किसी वक़्त चली आये।"

मैं मुस्कराया। शायद उस छोकरे को बस-स्टैण्ड पर बैठते बहुत दिन हो गये थे।

"रख दे जामुन ! नहीं तो कहूँगा लाला से।"

छोटे लड़के ने हमें बातों में व्यस्त देख कर एक जामुन उठा लिया था। जामुन उस के मुँह के बिल्कुल नज़दीक था।

"रख दे !....मैं कह रहा हूँ !" बड़ा कुछ दूर से ही धमकी दे रहा था। शायद उसे ख़तरा था कि अगर उस ने छोटे को पकड़ने की कोशिश की, तो वह घबराहट में जामुन मुँह में डाल लेगा।

छोटा लड़का बड़े की धमकी को माप-तोल रहा था।

"नहीं रखेगा ?" अच्छा, आने दे लाला को !

मैं ने सोचा, उसे कहूँ, खा लेने दो, बच्चा है, मगर फिर ख़याल आया, कहीं इस छोकरे ने जामुन वाले से कह दिया, तो बहुत लज्जित होना पड़ेगा। जामुन वाला बहुत सख़्त दिखायी देता था। छोटे लड़के ने जामुन टोकरे में रख दिया और आहिस्ते से रोने लग गया।

"तू मुझे ही मरवायेगा किसी दिन !" बड़े ने कहा।

"यह तुम्हारा छोटा भाई नज़र आता है ?" मैं ने कहा।

"जी, हाँ," बड़े लड़के ने इस अन्दाज़ से कहा, मानो कह रहा हो, है तो भाई, लेकिन आदतें बहुत बुरी हैं इस की।

मैं ने ज़रा आगे बढ़ कर छोटे लड़के के बदन पर हल्की, सी चुटकी ली, "जामुन बहुत अच्छे लगते हैं तुझे ?"

उस ने झेंप कर रोना बन्द कर दिया और बड़े लड़के की गोद में बैठने की कोशिश करने लगा। उस की उमर यही चार वर्ष के लगभग होगी। बड़े लड़के की उमर का सही अनुमान लगाना मेरे लिए कठिन था। अगर उस ने एक-दो बातें न की होतीं, तो मैं उसे दस-ग्यारह वर्ष का ही समझता।

आते ही जामुन वाले ने टोकरों की तरफ देखा, फिर उन लड़कों की तरफ और फिर मुस्कराकर मेरी तरफ़। मेरा जी चाहा चुपके से अपना होंठ दाँतों पर से हटा दूँ।

"इस वक़्त बसें तो ज़रा देर से ही आती हैं," उस ने शायद मेरी निगरानी का मुआवज़ा देने के विचार से कहा।

मैं ने घड़ी की तरफ देखा। दो बज रहे थे। अगर आध घन्टे में भी कोई बस आ गयी, तो मैं समय पर पहुँच सकता था।

"छिड़कने के लिए पानी ले आऊँ ?"

"मैं भी लाऊँ ?" छोटे लड़के ने पूछा।

मुझे हँसी आयी और मैं ने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया। मैं जामुन वाले के साथ मिल कर नहीं हँसना चाहता था। उस की हँसी से मुझे बू-सी आने लगी थी।

दोनों फिर जामुन वाले के घर की तरफ चले गये। जामुन वाले ने टोकरी में से मिट्टी का एक कुज्जा निकाल कर एक तरफ रख दिया और नमक का डिब्बा एक तरफ।

"दोनों भाई दिन-भर यहीं बने रहते हैं", जामुन वाले ने कहा।

मैं ख़ामोश रहा ।

"बड़ा लड़का बहुत चुस्त है ।"

मैं ख़ामोश था ।

"आप के ख़याल में उस की उमर क्या होगी ?"

तभी एक आदमी और एक औरत सड़क को पार कर स्टैण्ड पर आ पहुँचे । उस के साथ एक बच्चा भी था ।

"आप को यहाँ खड़े कितनी देर हुई ?" उस आदमी ने पैदायशी बस-मुसाफ़िर के अन्दाज़ में सवाल किया ।

"मुद्दतें हो गयी हैं, साहब !"

"मैं न कहती थी, इस वक़्त बस न मिलेगी ।"

"अब तो थोड़ी देर में आती ही होगी । मुझे काश्मीरी गेट जाना है । आप लोग कहाँ जायेंगे ।"

"हम तो मोरी गेट जायेंगे । वहाँ मेरी छोटी साली के बड़े लड़के का मुंडन है ।"

मैं ने ज़रा ग़ौर से उस की ओर देखा और ख़ामोश हो गया ।

"क्यों, जी, अब क्या बजा है ?" उस आदमी ने पूछा ।

"दो बज कर दस मिनट ।"

"मैं जामुन लूँगा," उन के बच्चे ने कहा ।

"जामुन तीन आने के पाव !" जामुन वाले ने आवाज़ लगायी ।

"जामुन तीन आने के पाव !" बड़े लड़के ने भी आवाज़ दी । वह एक टीन में पानी ले आया था और अब छिड़काव कर रहा था । छोटा लड़का भी कुछ उठाये हुए था ।

"यह मैं लाया हूँ," उस ने पत्तों का बंडल जामुन वाले के हाथ में देते हुए कहा ।

"शाबाश ! जामुन वाले ने सरसरी लहजे में कहा । और बंडल

को खोल कर पत्तों को पानी के टीन में डाल दिया।

"मैं वह फट्टा भी ले आया हूँ," बड़े लड़के ने लकड़ी का एक तख़्ता जामुन वाले को देते हुए कहा।

जामुन वाले ने जल्दी से अपने नीचे से दो ईंटें निकालीं और तख़्ते को उन के ऊपर जमा कर उसे पानी से धो डाला। और फिर दो टोकरों में से जामुन निकाल कर दो अलग-अलग ठेर लगा दिये।

एक ढेर में काले-काले जामुन थे। दूसरे में आधे काले, आधे लाल। जब जामुन वाले ने उन पर पानी फेंका, तो जामुन और भी काले नज़र आने लगे।

"मैं जामुन लूँगा!" बच्चे ने फिर कहा।

"जामुन तीन आने के पाव!" जामुन वाले ने आवाज़ लगायी।

"इसे एक आने के जामुन देना," उस आदमी ने जामुन वाले से कहा।

सिर्फ़ एक आने के?" जामुन वाले ने हँसते हुए कहा और कुछ जामुन कुज्जे में डाल कर नमक लगा कर बच्चे को दे दिये।

छोटा लड़का उठ कर बच्चे के पास खड़ा हो गया। बच्चा रोने लगा।

"तू इधर आ जा," औरत ने आगे बढ़ कर बच्चे को गोद में उठा लिया और अपने हाथ से खिलाने लगी।

छोटा लड़का कुछ देर तो उधर देखता रहा, फिर बड़े के पास जा बैठा।

"जामुन तीन आने के पाव!" बड़ा लड़का एक लय में आवाज़ दे रहा था "जामुन हैं ये काले-काले....!"

औरत मुस्करायी।

"कितना चालाक लड़का है!" आदमी ने कहा।

"और एक हमारा है यह भौंदू-सा !" औरत ने कहा और बच्चे को चूम लिया।

"क्या बात है, आज कोई गाहक नहीं आ रहा है। और ज़ोर से आवाज़ लगाऊँ ?" बड़े लड़के ने कहा और बग़ैर जवाब सुने चिल्लाने लगा, "जामुन....! ये रस-भरे जामुन !....ये काले बादल जामुन ! तीन आने पाव !...."

चिल्लाने के कारण उस की आवाज़ की लय लड़खड़ा रही थी, "जामुन तीन ही आने पाव !...."

"जब वह बोलता, उस की गरदन में हवा भर जाती और उस की नसों की मुटाई मेरी छोटी अँगुली के बराबर हो जाती। जामुन वाला जामुनों को सँवार रहा था। कभी-कभी वह भी आवाज़ लगाता, लेकिन शायद उसे इस बात का एहसास था कि बड़े लड़के की आवाज़ ज्यादा आकर्षक है। उस ने तख़्ते पर पड़े ढेरों को सँवार-सँवार दो बड़ी गाजरों की शक्ल में ढाल दिया। छोटा लड़का इस बीच में बहुत दिलचस्प हरकतें कर रहा था। जब बड़ा लड़का चिल्लाता 'जामुन तीन आने के पाव,' तो वह आहिस्ते से कहता, 'तीन आने के पाव,' और फिर मुँह को यों हिलाता, जैसे उस ने अभी-अभी एक खट्टा जामुन खा लिया हो। कभी-कभी ख़ुद ही उस का हाथ उठता और जामुन के ढेर की तरफ़ बढ़ने लगता। कभी जामुन वाला झटक देता और कभी बड़ा लड़का उस के हाथ को खींच लेता।

एक बस आयी और वह परिवार उस में सवार हो गया। मेरे लिए यह बस ठीक नहीं बैठती थी।

"जामुन तीन आने के पाव !....जामुन ख़ूब मज़े से खाओ !.... जामुन खा कर गर्मी भगाओ !...."

बड़ा लड़का पूरे ज़ोर से चिल्ला रहा था।

बस से कुछ लोग उतरे। दो औरतें जामुन वाले के पास आ कर रुकीं।

एक ने तीन आने पाव वाले और दूसरी ने चार आने पाव वाले जामुन लिये।

"आप फ़िकर न करें, बहिन जी। एक दाना भी ख़राब न होगा।" जामुन वाला कह रहा था।

औरतें काले-काले जामुन चुन-चुन कर पलड़े में डालतीं और जामुन वाला लाल-लाल। वह लाल उठा कर बाहर निकालतीं, तो जामुन वाला काले-काले।

"सभी एक-से हैं बहिनजी," जामुन वाला कह रहा था।

और जब वह औरतें जामुन ले कर जाने लगीं, तो छोटा लड़का दो-तीन कदम उन के पीछे चला और फिर वापस आ कर आँखें फाड़-फाड़ कर जामुनों की तरफ़ देखने लगा। उस का मुँह हिल रहा था।

थोड़ी देर में एक छोटा सा लड़का अपने बाप की अँगुली पकड़े जामुन वाले के पास आया। एक आने के जामुन लिए और बाप से बातें करता हुआ चला गया। छोटा लड़का थोड़ी दूर उन के पीछे भी गया और फिर लौट आया।

बड़ा लड़का ज़रा परे मोड़ पर खड़ा आवाज़ लगा रहा था "जामुन काले बादल !....जामुन काले रा !....तीन आने के पाव !"

तीन-चार छोकरों का एक गिरोह आया। सब ने एक-एक आने के जामुन लिए और वहीं बैठ कर खाने लगे। जामुन वाला मुस्करा रहा था।

छोटा लड़का उन लड़कों को जामुन खाता देख बहुत सिटपटा रहा था। कभी जामुन वाले की तरफ़ देखता, कभी जामुनों की तरफ़ और कभी एकाएक उस के सारे बदन में खुजली होने लगती। एक-

दो बार उस ने बड़े भाई की तरफ़ देखा और यों मुँह बनाया, जैसे कह रहा हो, एक आने के मुझे भी दिलवा दो।

"अभी दूसरी बस आयेगी, तब बिकरी होगी," बड़े लड़के ने जामुन वाले से कहा। और जामुन वाले ने मेरी तरफ़ देख कर अपनी एक आँख को झपका दिया ! जाने वह मुझे क्या समझाना चाहता था।

"शाम तक सारे बिक जायेंगे," बड़ा लड़का कह रहा था।

जामुन वाला मुस्कराया।

वह छोकरे जामुन खा कर चले गये, तो बड़े लड़के ने आहिस्ते से जामुन वाले से कहा, "अब मुझे जामुन दोगे ?"

"हाँ-हाँ, दूँगा," लेकिन कुछ बिकरी तो हो ले।...."अभी-अभी तो रोटी खा कर आये हो।" जामुन वाले ने यह आखिरी बात शायद मुझे सुनाने के लिए कही थी।

"मुझे भी दोगे न ?" छोटे लड़के ने कहा।

"हाँ।"

इतने में एक ताँगा वाला आया और जामुनों को देख कर रीझ गया। ताँगा वहीं रोक कर उस ने एक पात्र जामुन लिए और जामुन वाले के पास ही बैठ कर खाने लगा। ताँगे वाले के मुँह में दाँत नहीं थे और वह एक-एक जामुन की खाल उतारने में बहुत देर लगा रहा था। उस के जामुन अभी आधे भी खत्म नहीं हुए थे कि दो युवकों ने आ कर पूछा "ताँगा खाली है ?"

"बिल्कुल खाली है, साहब।"

"कनाट प्लेस," कह कर वे लोग ताँगे में बैठ गये। ताँगा वाले ने जामुनों को लपेट कर जेब में डाल लिया।

ताँगा चलने से पहले उन में से एक ने कहा, "जामुन

खाओगे ?"

दूसरे ने कहा, "पेट के लिए अच्छी चीज़ है ।"

और बड़े लड़के ने आहिस्ते से आवाज़ लगा दी "पेट के रोगों में अक्सीर ये जामुन काले-स्याह !...."

वे लोग हँस पड़े । एक ने जामुन वाले को आवाज़ दी, "आध सेर जामुन देना, भई ।"

"आध सेर ! तुम्हारा दिमाग़ ख़राब है !" दूसरे ने कहा ।

और जामुन वाले ने जल्दी-जल्दी तौल कर जामुनों को नमक लगाया ।

"लाओ, मैं पकड़ा दूँ," बड़े लड़के ने कहा ।

मगर जामुन वाले ने खुद ही उठ कर जामुन बाबुओं को दिये और उन से पैसे ले लिये ।"

जब ताँगा चला उया, तो जामुन वाले ने कहा, "यह बाबू लोग इन छोकरों से हाथ से चीज़ खुश हो कर नहीं लेते ।"

बड़े लड़के ने फिर आहिस्ते से कहा, "अब तो मुझे जामुन दो, लाला ।"

"देखो, मुझे तंग न करो । मैं खुद तुम्हें दूँगा । ज़रा कुछ ग्राहक तो आ लेने दो ।"

जामुन वाले ने कुछ और जामुन तख्ते पर उँडेल दिये और उन पर पानी डाल कर, उन्हें सँवारते-सँवारते एक जामुन उठा कर मुँह में फेंक लिया ।

घडी में ढाई बज रहे थे । यों लग रहा था कि ट्यूशन पर पहुँचने की बजाय मैं उस जामुन वाले के पास खड़ा-खड़ा बूढ़ा हो जाऊँगा । बड़ा लड़का छोटे लड़के के पास बैठ गया था । अब उन दोनों की आँखें जामुनों पर गडी हुई थीं । उन की पीठ मेरी तरफ़ थी । मैं दूसरी

तरफ़ जा खड़ा हुआ। मैं ने देखा, जब छोटे का मुँह हिलता, तो बड़े का मुँह भी हिलने लगता।

"जामुन खाओ !....जामुन खाओ !"— जामुन वाले की आवाज़ इस क़दर भद्दी थी कि आदमी जामुन खाते-खाते थूक दे।

एक बस और आयी, मगर इक्कीस नम्बर नहीं थी। आज इक्कीस नम्बर को क्या हो गया है, मैं यह वाक्य बोलते-बोलते रुका।

"अरे, लौंडे उठ कर आवाज़ लगा, इस बस में से तो बहुत लोग उतर रहे हैं।"

बड़ा लड़का उठा और वहीं खड़ा-खड़ा आवाज़ लगाने लगा। इत्तफ़ाक़ से बस से उतरने वाले सभी लोगों ने जामुन ख़रीदे और एक ने तो पूरे टोकरियों का सौदा भी करना चाहा।

बड़े लड़के ने जामुन वाले से कहा, "लाला, अब तो दो।"

ज़ामुन वाले ने पहले तो उसे घूर कर ख़ामोश कर देने की कोशिश की, फिर मेरी तरफ़ देख कर मुस्कराया, एक आँख झपकायी और कहा, "घबरा क्यों रहे हो, कहा तो है एक बार, अभी दूँगा।"

"मैं जामुन लूँगा !" छोटे लड़के ने पाँव ज़मीन पर मारते हुए कहा।

इसे तो एक-दो जामुन दे दो, लाला !" बड़े लड़के के बुज़ुरगाना अन्दाज़ में कहा।

जामुन वाले ने एक टोकरे में से एक छोटा-सा लिफ़ाफ़ा निकाला और उस में से तीन दाने निकाल कर छोटे लड़के की हथेली पर रख दिये। उन जामुनों का रंग काला था, न लाल। शायद इसीलिए पहले छोटे लड़के ने फिर बड़े लड़के ने उसे ग़ौर से देखा और फिर छोटे लड़के ने एक जामुन मुँह में डाल लिया। उस ने एक जामुन बड़े लड़के

को दिया। उस ने जामुन हाथ में ले लिया, परन्तु छोटे भाई और जामुन वाले की आँख बचा कर एक ओर फेंक दिया।

मुझ से कुछ ही दूर पड़ा वह जामुन जब जामुन वाले ने देखा, तो गुस्से से बोला, "अरे, नवाब साहब ! इस तरह फेंकने के लिए लेते हो जामुन ?"

बड़ा लड़का चौंका, क्यों कि उसका खयाल था कि जामुन वाला अपने ध्यान में मस्त है।

जामुन वाला चीख पड़ा, "उठा कर खाओ उस जामुन को !"

जामुन वाले की आज्ञा मानने में बड़े लड़के ने कुछ संकोच किया, किन्तु छोटे को शायद उन 'स्पेशल' जामुनों में भी मज़ा आया था। उस ने दौड़ कर जामुन उठा लिया और अपने पेट से पोंछ कर मुँह में डाल लिया। जामुन वाला ने फिर मेरी ओर देख कर मुस्करा दिया।

दूसरी ओर से एक बस आ कर स्टैण्ड पर रुकी। इक्कीस नम्बर थी। मैं ने घड़ी की तरफ देखा। पौने तीन बज रहे थे। कम-से-कम दस मिनट में लौटेगी, मैं ने सोचा।

बस से बहुत-सी सवारियाँ उतरीं। जामुन वाले ने लड़के से कहा, "आवाज़ लगाओ !"

लड़के ने वहीं खड़े-खड़े बेदिली से आवाज़ दी, "जामुन ले लो !.... जामुन ले लो !....जामुन तीन आने के पाव !...."

उस की आवाज़ अब की बहुत ही फीकी और अनाकर्षक थी। लेकिन फिर भी शायद बस से उतरने वालों को जामुन खाने में ज़्यादा मज़ा आता है और ख़ास तौर पर औरतों को, शायद बस की वजह से उन के दिमाग़ चकरा जाते हैं। मैं फ़ज़ूल सोचने लगा। जामुन वाले के इर्द-गिर्द भीड़-सी जमा हो गयी।

"एक पाव मुझे दो "

"मुझे आध पाव उन में से दो।

"डेढ़ पाव ले लूँगा, साढ़े तीन आने के हिसाब से दो तो।"

जामुन वाला निहायत फुर्ती से एक पाव वाले को साढ़े तीन छटाँक और आध पाव वाले को डेढ़ तौल-तौल कर कुज्जे में डाल-डाल कर जामुन बाँट रहा था। मैं ने एक बार फिर महसूस किया कि वह एक बहुत कामयाब जामुन बेचने वाला है। जामुन तौलते-तौलते उस ने देखा, उस के पत्ते कम हो रहे हैं, तो बोला, "लौंडे, जाओ, दौड़ कर घर से पत्तों का बंडल उठा लाओ।"

बड़ा लड़का दौड़ता हुआ गया और एक मिनट में पत्तों का बंडल उठा कर ले आया। अब भी जामुन वाले के इर्द-गिर्द बहुत-से लोग खड़े थे। बड़े लड़के ने फिर पूरे शौक से आवाज़ लगायी, "जामुन काले बादल!....जामुन काले स्याह!....गर्मी दे भगा!"

कुछ लोग उस के इस नारे पर हँसे। एक ने जामुन वाले से कहा, "भई, लौंडा खूब रखा है तूने!"

और उस भीड़ को चीर कर जामुन वाले की मुस्कराहट मुझ तक तक पहुँची और मैं ने मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया। इस भीड़-भड़के में मैं छोटे लड़के को भूल-सा गया था। मगर जब लोग कुछ कम हुए, तो मैं ने देखा, वह तख्त के पास बैठा ऊपर की ओर देख रहा था। उस का मुँह खुला था।

"जामुन है बहुत बढ़िया!....इन को खा ले मेरी बुढ़िया!...."

जामुन वाले-समेत हम सब लोग हँस पड़े। लेकिन छोटा लड़का अभी तक मुँह खोले ऊपर की तरफ़ देख रहा था। मुझे यों महसूस हुआ कि वह लड़का कहीं बहुत नीचे गहराई में बैठा हो और जामुन खाने वाले बहुत ऊँचाई पर। एक लम्बे-से आदमी को जाने क्या सूझी, उस ने एक जामुन उठाया और यों इशारा किया, जैसे उस छोटे

लड़के के खुले मुँह में फेंकना चाहता हो। छोटे लड़के ने मुँह और ज़्यादा खोल दिया और उस आदमी ने हँस कर जामुन अपने मुँह में डाल लिया। बड़े लड़के ने बोलना बन्द कर दिया था। बस जा चुकी थी और आस-पास कोई नया ग्राहक नज़र नहीं आता था। वह अब अपनी गरदन को सहला रहा था। उसने अचानक ही छोटे से कहा, "छोटे! यह क्या कर रहे हो?"

छोटा लड़का उस लम्बे आदमी से जामुन माँग रहा था। झेंप कर उस ने नज़र नीची कर ली। फिर उस ने जामुन वाले की तरफ़ देखना शुरू कर दिया। बड़े लड़के ने जामुन वाले से कहा, "लाला, अब तो दे दो!"

लाला की टोकरी के आस-पास कुछ ग्राहक मौजूद थे। उसे लड़के के इस व्यवहार पर गुस्सा आ गया। बोला, "अरे, तुम्हें कै बार कहा है, ग्राहकों के सामने मत माँगा कर!"

लड़का चुप हो गया।

"माँगने की आदत परमात्मा किसी को न डाले, एक अधेड़ उमर की औरत ने कहा और कन्धे मटकाती हुई एक तरफ़ चल दी।

लड़का टिकटिकी लगा कर जामुन वाले की तरफ़ देख रहा था। शायद वह जामुन वाले की निगाह को पकड़ना चाहता था।

"यह ले," जामुन वाले ने उसी लिफ़ाफ़े में से पुराने, सूखे हुए जामुन निकाल कर बड़े लड़के को देते हुए कहा, "और आवाज़ दे।"

मैं धीरे से मुस्काराया, जामुन वाले से आँखें मिलीं, तो उस ने नज़र फेर ली।

"जामुन तीन आने के पाव!"

अब कुछ लोग और भी आ गये थे और एक-दूसरे से बसों के बारे में शिकवा-शिकायत कर रहे थे। मैं ने बीसियों बार घड़ी देख कर यह

नतीजा निकाल लिया था कि अगले रोज से घड़ी बाँध कर बस स्टैंड पर खड़ा नहीं होऊँगा। जामुन वाले के पास अब एक ग्राहक भी नहीं था।

"अब तो कोई ग्राहक नहीं है, लाला," बड़े लड़के ने बहुत ही धीमी आवाज़ में कहा, जैसे चाहता हो कि मैं भी उस की आवाज़ न सुन पाऊँ। जामुन वाले ने सुनी-अन-सुनी करते हुए खुद आवाज़ लगायी "आओ, जामुन के खाने वालो !...."

"लाला तुम ने कहा था।"

लेकिन पहले इस के कि वह अपना वाक्य समाप्त करता एक औरत चार बच्चों को साथ लिये हुए जामुन वाले के पास आ रुकी। पाँचवाँ उस की गोद में था। मैं ने सोचा, क्या खूब हो, अगर छठा भी उस ने कहीं छिपा रखा हो।

"आओ, बहन जी !" जामुन वाले ने उन का स्वागत किया। मुझे यों महसूस हुआ कि वह औरत और उस के बच्चे उस के पक्के ग्राहकों में से थे। और साथ ही उस के ज़रिये उसे और बहुत से ग्राहकों की आशा भी नज़र आती थी।

बहन जी जामुन वाले के पास बैठ गयीं। बच्चों को देख कर छोटा लड़का उन के करीब आ गया। वह सूखे हुए जामुन कब के खा चुका था। और वह अब उन बच्चों के मुँह की तरफ़ देख रहा था। बड़ा लड़का खामोश था। मैं ने ग़ौर से देखा, तो उस की नज़रें भी बहुत ललचा रही थीं।

"कितने दूँ ?" जामुन वाले ने पूछा।

"कैसे दिये हैं ?" वह औरत भाव बनाने की आदत रखती थी।

"यह चार आने, वह साढ़े चार आने," जामुन वाले ने बताया।

मैं चाहता था कि वह मेरी तरफ़ देखे और मैं मुस्करा दूँ।

कुछ सौदेबाज़ी के बाद जामुन वाले ने तीन आने वाले जामुन ढाई आने पर देना स्वीकार कर लिया।

"एक-एक आने के सब को दे दो," औरत ने अँगुली से बच्चों की तरफ इशारा करते हुए कहा और खुद रूमाल से पैसे निकालने लगी।

छोटा लड़का भी उन बच्चों की कतार में खड़ा हो गया और जब जामुन वाले ने एक-एक कर के सब बच्चों के हाथ में जामुन का पत्ता दे दिया, तो उस छोटे लड़के ने भी हाथ बढ़ा दिया। मुझे पहले से ही ख़तरा था कि वह ऐसा ही करेगा।

जामुन वाले ने 'स्पेशल' जामुनों के लिफ़ाफ़े में हाथ डाला, मगर वह भी खत्म हो चुके थे। सिर्फ एक जामुन निकला, वह उस ने छोटे लड़के के हाथ में दे दिया। मेरा ख़याल था, शायद वह उसे फेंक कर बच्चों की तरह जिद्द करने लगेगा, मैं यह बड़े जामुन लूँगा! मगर उस ने वह जामुन मुँह में डाल लिया और फिर उन बच्चों के मुँह में रस-भरे काले-काले जामुन गायब होते देख कर उस के मुँह से राल टपकने लगी।

राल उस के पेट पर लकीर-सी बनाती हुई उस के जिस्म में ही जज़्ब हो गयी। बड़ा लड़का भी अब चल कर अपने छोटे भाई के करीब आ गया था। जामुन वाला जामुनों को सँवार रहा था और टोकरे में से और जामुन तख़्ते पर उँडेल रहा था। उन पर पानी छिड़क रहा था। पत्तों के नये बंडल से पत्ते निकाल-निकाल कर पानी में भिगो रहा था। उस के जामुन बहुत ख़ूबसूरत नज़र आ रहे थे।

मगर बड़ा लड़का और छोटा लड़का दोनों उस की तरफ़ पीठ किये बच्चों की तरफ मुँह उठाये खड़े थे। दोनों के मुँह एक साथ खुलते और बन्द हो जाते। कभी-कभी मुँह में इकट्ठी हो गयी राल को वह एक साथ निगल लेते। बड़े लड़के के हाथ छोटे लड़के के कंधों पर थे।

मेरे देखते-ही-देखते उस के मुँह से भी राल की एक धार बही, मगर उस ने उसे बीच में ही तोड़ कर फिर वापस मुँह में खींच लिया।

औरत जा चुकी थी। मगर उस के बच्चे वहीं खड़े जामुन खा रहे थे और साथ-साथ बातें भी कर रहे थे।

"मेरा जामुन बहुत मीठा है।"

"मेरा तुम से भी ज़्यादा।"

"देखें, पहले कौन खाता है।"

"मुझे एक जामुन दे दो, बड़े भाई हो।"

"चल, बे, चल !"

बच्चे अपनी बातों में इस क़दर मगन थे कि उन में से किसी ने उन दो भाइयों की तरफ़ ध्यान न दिया था। छोटा उचक-उचक कर उन के जामुनों की तरफ़ देख रहा था।

उस के हाथ अपने-ही-आप खुल रहे थे और बन्द हो रहे थे। और कभी-कभी वह पाँव ज़मीन पर दे मारता....और कभी-कभी उन बच्चों की नकल में वह यों ही हाथ मुँह की तरफ़ ले जाता। बड़ा लड़का यह सब देख रहा था। उस की हालत भी बुरी थी।

मैं ने जेब में हाथ डाला। उस में दस आने थे, नौ आने किराये पर लगते थे और एक आने का सिर्फ़ एक सिग्रेट आता था। मैं एका-एक फ़ैसला न कर सका कि मैं सिग्रेट पिऊँ या....

"लाला, दे दो दो-एक जामुन," बड़े लड़के ने शायद अचानक ही मुँह मोड़ कर फिर लाला के सामने हाथ फैला दिया था। लेकिन वह छोटा लड़का अब भी बदस्तूर उन बच्चों के ख़त्म होते ही जामुनों की तरफ़ देख-देख कर व्याकुल-सा हो रहा था।

"बस-बस, जब और नहीं हैं मेरे पास !" जामुन वाले ने झुँझलाहट-भरे लहजे में जवाब दिया।

दो-एक और ग्राहक जामुन माँग रहे थे।

बड़े लड़के ने फिर जामुन वाले की तरफ देखा। दूर से एक बस आ रही थी और मैं अभी तक फैसला नहीं कर पा रहा था कि सिग्रेट पिऊँ या....मैं चल कर सड़क के किनारे पहुँच गया और जेब में पड़ी दो चवन्नियाँ और एक दुअन्नी को मैं मसलने लगा। बस बहुत नज़दीक आ रही थी।

मैं ने मुड़ कर देखा, तो छोटा लड़का नीचे बैठा था और बड़ा लड़का जामुन वाले को घूर रहा था। मैं सोच रहा था, शायद बस आने से पहले वह जामुन वाले को खरी-खरी सुना दे। मैं चाहता था, कम-से-कम एक बार तो बोले। फिर मैं भी उस की तरफ़दारी कर दूँगा। मगर बस बहुत ही करीब आ चुकी थी और फिर उस लड़के को न को जाने क्या सूझी कि रोने लगा।

"एक जामुन दे दो, लाला !"

मैं चिढ़-सा गया। रोने की भला क्या आवश्यकता थी। छोटे की तरफ़ देखा, तो वह जमीन पर बैठा उन बच्चों की फेंकी हुई गीली-गीली गुठलियाँ उठा रहा था।

जामुन वाले के नये ग्राहकों में से एक-दूसरे को कह रहा था, "जामुन तो अच्छी चीज़ है ही, उस की गुठली के भी हजार लाभ हैं। नामर्दी का एक ही इलाज है।....

बस ऐन सिर पर पहुँच चुकी थी। इक्कीस नम्बर। मैं ट्यूशन पर ठीक समय पर पहुँच सकूँगा। इसी खुशी में भूल गया कि कुछ क्षण पहले मैं उन बच्चों के लिए एक आने के जामुन खरीदने की सोच रहा था।

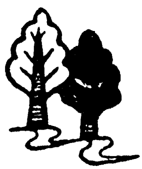

माई की महिमा

माई माया के मकान के दरवाज़े पर कई महीनों से एक मैला चीकट गत्ता झूल रहा था— मकान किराये के लिए खाली है।

गत्ते से घी की बू आती थी।

माई माया साहूकारी के अलावा घी का व्यापार भी करती थी।

हर पांचवें रोज़ गत्ता ग़ायब हो जाता और माई गली के बच्चों से पूछ-ताछ करती सुनायी देती— कहीं मेरा गत्ता तो नहीं देखा तुम ने—ऐसा मालूम होता, जैसे माई का इकलौता बेटा खो गया हो।

वैसे माई बेऔलाद थी। बाल-विधवा थी। और उस का मकान खासा बड़ा था, दुमंजिला था गली की औरतों को यह बात बहुत नापसन्द थी। माई ने मकान का नाम 'माया-निवास' रखा था। गली वालों में वह 'मायाजाल' या 'माई की समाधि' के नाम से मशहूर था।

बच्चे माई की पूछ-ताछ के जवाब में ऐसी भोली सूरत बना लेते कि माई आग-बबूला हो-हो जाती। कहती—'झूठा आदमी मुझे एक आँख नहीं भाता।' गुस्से की हालत में माई के सारे शरीर में एक घिनौनी-सी हलचल मच जाती, जैसे उस का अंग-अंग किसी अजीब

ताल पर थिरक रहा हो। उस के चेहरे की झुर्रियाँ कीड़ों की तरह कुलबुलाने लगतीं, पलकहीन आँखें तेज़-तेज़ झपकने लगतीं, नथुने कभी यों बिल्कुल बन्द हो जाते, जैसे दो चुँधी आँखें हों और कभी इस तरह इतने खुल जाते, जैसे दो छोटे-छोटे मुँह हों। उस की ठोढ़ी ऐसे हिलने लगती, जैसे अभी टूट कर नीचे जा गिरेगी। मूँछों के सफ़ेद बाल अकड़ जाते और बाक़ी रह गये दो-तीन दाँत जैसे सारे मुँह का चक्कर लगा चुकने के बाद हलक़ में जा अटकने के बजाय न जाने कैसे फिर अपने-अपने स्थान पर वापस लौट जाते।

माई माया को इस हालत में देख कर यों जान पड़ता, जैसे सामने कोई छोटा सा कारख़ाना ख़ामोशी से चल रहा हो।

गली की औरतों का कहना था कि माई चुड़ैल है।

माई क़स्बे-भर में सब से ज़्यादा बूढ़ी थी। और लोग प्रायः मज़ाक़ में कहा करते कि महात्मा गाँधी माई से दस-बीस साल छोटे ज़रूर होंगे। ज़ाहिर है कि काँग्रेस का उस क़स्बे में बहुत ज़ोर रहा होगा।

माई का मकान बिल्कुल नया था। कहीं से चूता नहीं था। किसी दीवार में कोई दरार नहीं थी। किसी कमरे का फ़र्श उधड़ा हुआ नहीं था, सब दरवाज़े मज़बूत थे, और बैठक का फ़र्श सुन्दर रंग-बिरंगी टाइलों से बँधवाया गया था। मकान गर्मियों में ठण्डा और सर्दियों में गर्म रहता था। नल का पानी बहुत मीठा था। सभी मकान की तारीफ़ करते और माई की निन्दा। कहते अगर माई किसी तरह इस मकान को उठा कर दिल्ली ले जाय तो सैकड़ों रुपये किराये में आयें। माई कहती ऐसे मज़ाक़ करने की बजाय कोई उसे दस रुपये महीने का किरायेदार दिलवा दे तो वह सारी उमर उस का किया न भूले। लोग हैरान होते कि माई जिस की कंजूसी का मुक़ाबला उस मशहूर कहावती मक्खीचूस से किया जा सकता है, उस मकान पर इतना पैसा कैसे ख़र्च कर पायी

होगी ? फिर सोचते कि परमात्मा के रंग न्यारे हैं, उस की महिमा का कोई ठिकाना नहीं। कहते कि किराया तो शायद कोई मुसीबत का मारा तथा ओहदेदार दे भी देता, लेकिन मालकिन की शर्तें कौन पूरी करे—हर रोज़ सुबह-शाम फ़र्श धोने होंगे और कपड़े हफ़्ते में में सिर्फ़ एक बार। दीवारों पर कोई तस्वीर या कलेण्डर आदि नहीं टाँगना होगा। किसी क़िस्म का माँस नहीं पकाना होगा। रात के वक़्त सिग्रेट नहीं पीना होगा। बच्चों की संख्या ज़्यादा नहीं होनी चाहिये। और उन्हें हिदायत हो कि सीढ़ियाँ उतरते-चढ़ते अपनी जान और सीढ़ियों का एक-सा ख्याल रखें। धुएँ वाली लकड़ियाँ नहीं जलानी होंगी। उस मकान में कोई शादी या मुण्डन उस की मंजूरी के बग़ैर नहीं होगा। ज़रूरत से ज़्यादा मेहमानों का आना-जाना न रहेगा—ये सब शर्तें तो साफ़ थीं माई अगर खुद पढ़-लिख सकती और गत्ते हर आये दिन ग़ायब न होते रहते, तो इन की फ़ेहरिस्त भी शायद उसी मैले-चीकट, घी-सने गत्ते पर लिख दी गयी होती। इन्हीं शर्तों को सुन कर उस विलायत पास डाक्टर साहनी ने सोचा था और बाद में किसी से कहा भी था— माई ने ट्रेनिंग शायद लण्डन की किसी लैंडलेडी से ली है।

माई माया की चर्चा घर-घर में होती थी।

माई कहती, किराये के लालच में वह अपने सोने-से मकान का सत्यानाश नहीं होने देगी और जब तक उसे अपना मन-पसन्द किरायेदार नही मिलेगा, मकान खाली पड़ा रहेगा। माई का यह आदर्शवाद लोगों की समझ में न आता। वे हैरान होते कि एक तरफ़ तो माई पैसे पर जान देने के लिए मशहूर है और दूसरी ओर वह किराये के बारे में इतनी बेमयाज़ है। फिर उन्हें यह जानने पर मजबूर होना होना पड़ता कि पैसे और अपनी जान से भी अधिक माई

को अपना मकान अज़ीज़ है। और न जाने किस शोख़ मिज़ाज़ ने कहावत चला दी थी—जान जाय, मकान न जाय! इसी कहावत का एक और रूप था— मकान है तो जहान है! किरायेदार की खोज़ और मन-पसन्द किरायेदार की खासियतों का बखान सुन कर किसी ने बहुत भाले आश्चर्य कहा था, माई की शर्तें सुन कर लगता है, जैसे कोई अपनी कन्या के लिये वर खोज रहा हो!

बहुत कम लोग जानते थे कि माई का एक भाई भी था। उस का नाम मायादास था। मायादास को कभी किसी ने उस क़स्बे में नहीं देखा था। माई माया हर साल उसे राखी और टीका भेजती थी। उन अवसरों पर पोस्टकार्ड की बजाय किसी बच्चे को डाकख़ाने से लिफ़ाफ़ा ला कर माई को देना पड़ता था। मायादास के नाम-पता लिखवा कर माई पोस्टकार्ड या लिफ़ाफ़े को अपनी सदा बेचैन रहने वाली ज्योति-हीन आँखों के पास ले जा कर ऐसी तन्मयता से उस का निरीक्षण करती, मानो •अक्षरों की बनावट से उन के अभिप्राय का अन्दाज़ा लगा रही हो। थोड़ी देर जाँच-पड़ताल के बाद पता-लेखक को पता पढ़ कर सुनाने के लिए कहा जाता। इतने में पत्र पर माई की अँगुलियों की कई छोटी-छोटी मोहरें चस्पा हो चुकी होतीं और उस से घी की बू आने लगती। घी की बू माई का ट्रेडमार्क था।

....मेरे जान-से भी प्यारे भाई मायादास, सदा उस परमपिता परमेश्वर से तुम्हारी लम्बी हयाती की ख़ैर माँगने वाली तुम्हारी भैन माया हर घड़ी तुम्हारी चिट्ठी की इन्तज़ारी में रहती है। मैं बिल्कुल सोला आने ठीक-ठाक हूँ। तुम अपनी सही-सलामती की ख़बर जल्दी-जल्दी क्यों नहीं देते? मेरा दिल हर वक़्त तुम्हारे लिए उदास रहता है। और अहवाल यह है कि मकान अभी तक खाली पड़ा है। राम-

भरोसे बैठी हूँ। फ़िकर करने की ज़रूरत नहीं। कभी तो वह मालिक कोई शरीफ़-सा किरायेदार भेज ही देगा। जिस को राखे साइयाँ, मार न सक्के कोय। और घी का भाव बहुत ऊपर चढ़ गया है। उस तरफ़ क्या हाल है, सब खोल कर लिखना। और फ़सल आसामियों की इस बार भी ज़्यादा अच्छी नहीं हुई। करज़ की बहुत माँग है। सारा पैसा लग जायगा। एक घड़ा और गहनों से भर गया है। मेरा कहने का मतलब यह है कि भगवान् जो करता है, ठीक ही करता है। हाँ, एक बात और यह है कि अगर लड़ाई छिड़ गयी तो पता नहीं क्या होगा। अगर तुम्हें कुछ पता हो तो खोल कर लिखना कि आज-कल अख़बारों में लड़ाई के बारे में क्या ख़बरें निकल रही हैं। लड़ाई कब छिड़ेगी और सोने-चाँदी के निरखों पर उस का क्या असर पड़ेगा। सब सोच समझ कर लिखना, अच्छा ! और....

पत्र शुरू करवाने से पहले माई पत्र लिखने वाले बच्चे से बार-बार कहती, छोटा-छोटा लिखना। फिर धीरे से कहती किसी से कहना नहीं कि क्या लिखवाया है। फिर पत्र ख़त्म हो जाने पर पैसा इनाम देने का वायदा करती। और बच्चे के सभी भीतरी सन्देहों के बावजूद वायदा पूरा कर देती। और बच्चा इनाम की ख़ुशी और लालच में पत्र लिखने, पढ़ कर सुनाने और उस में आवश्यक संशोधन आदि करने की ज़हमत को भूल जाता और साथ ही माई की हिदायत भी। सीधा घर जा कर माँ से कहता, आज माई माया ने मुझे एक पैसा इनाम दिया है ! माँ हैरान होती और ख़ुश भी। और इस तरह थोड़ी ही देर में माई माया का राज़ गली-भर में प्रसारित हो जाता।

शायद इसी लिए माई किसी एक बच्चे से लगातार दो पत्र कभी नहीं लिखवाती थी, मजबूरी की बात दूसरी है।

पत्र डालने माई हमेशा स्वयं जाती और अपने घर से बहुत दूर

वाले किसी लेटर बक्स में पत्र डाल कर उस के ताले को खूब ठोंक-पीट कर देखती।

माई के अपने मकान का ताला गली भर में अपनी मज़बूती और भद्देपन के लिए मशहूर था। लोग कहते कि माई ने वह ताला सीधा जर्मनी से मँगवाया था और उस विलायत-पास डॉक्टर साहनी ने इसी मज़ाक़ को और आगे बढ़ाते हुए कहा था कि ख़ुद हिटलर ने बनवा कर भेजा था वह ताला!

क़स्बे का बच्चा-बच्चा हिटलर के नाम से वाक़िफ़ था। कुछ घरों में उस की तस्वीरें भी टँगी हुई थीं और क़स्बे के दोनों स्कूलों में एक गीत प्रचलित था जिस की पहली लाइन थी— हिटलर ने चर्चल को दियो टेलिफ़ून खड़काये।

एक बार एक सिपाही ने माई को लेटर बक्स का ताला खींचते हुए देख कर बनावटी रौब से कहा था कि, ऐ माई, तू सरकारी खज़ाने पर डाका डालने से भी बाज़ नहीं आती? और माई ने इस घटना का वर्णन भाई मायादास के नाम अपने अगले पत्र में करने के बाद लिखवाया था—यह सारा शहर तेरी बहन का दुश्मन है।

शहर का तो मालूम नहीं, लेकिन गली में शायद ही किसी को माई से कोई हमदर्दी हो।

कभी-कभी गली की औरतें माई के दरवाज़े के सामने से गुज़रते हुए ठिठक कर रह जातीं। माई ड्योढ़ी में बैठी चर्खा कात रही होती और साथ आँखें बन्द किये झूम-झूम कर लरज़ती हुई आवाज़ में, बेसुर-ताल के, गुनगुना रही होती— भई मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दरद न जाने कोय, भई मैं तो....।

शायद इसी आधार पर कुछ लोगों में बात चल निकली थी कि

माई मीरा बाई का ही कलियुगी अवतार है।

इस भजन के अलावा कभी किसी ने माई की ज़बान से राम-नाम आदि नहीं सुना। गली की औरतें कहतीं— माई नास्तिक है। वह कभी किसी मन्दिर या गुरुद्वारे नहीं जाती, किसी सन्त-महात्मा पर उस का विश्वास नहीं, कभी उस ने किसी भले काम में एक पाई दान नहीं दी, कभी किसी भिखारी की झोली में चुटकी भर आटा नहीं डाला।

सब जानते थे कि माई का स्थान नरक में सुरक्षित है।

कुछ औरतों ने उस की शिकायत स्वामी पूर्णानन्दजी महाराज से भी की थी। स्वामी जी इलाक़े-भर की औरतों के गुरु थे। स्वामी जी ने दीर्घ निश्वास ले कर कहा था, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। औरतें यह सुन कर स्वामी जी के प्रति श्रद्धा के भार से और नीचे जा दबी थीं और बहुत देर तक उन के चरणों के इर्द-गिर्द बैठी, उन की तेजस्वी मुखाकृति पर सहमी-सहमी निगाहें डालती हुई हैरान होती रही थीं कि इतना बड़ा धर्मात्मा उस छोटे-से पापी क़स्बे में कैसे आ टिका! और और घर लौटते समय उन में से एक ने अनजाने में स्वामी जी के-से लहजे में इस घोर आश्चर्य को यों व्यक्त किया था; हे ईश्वर, तेरी लीला अपरम्पार है! और इस पर बाक़ी सब औरतें खिल-खिला कर हँसी पड़ी थीं और एक ने कहा था, छोटे मुँह बड़ी बात! और उस छोटे मुँह वाली औरत ने आइन्दा कभी कोई बड़ी बात न करने का खामोश फ़ैसला कर लिया था।

इस के कुछ ही दिन बाद माई के मकान की एक दीवार पर मोटे हरूफ़ में लिखा देखा गया—जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। लिखने वाले ने कोयले का प्रयोग किया था, सो, माई ने एक-दो दिन में उसे किसी-न-किसी तरह से मिटा दिया। लेकिन उस के बाद किसी ने लिख

दिया—सिकन्दर जब गया दुनिया से दोनों हाथ खाली थे। माई ने उसे भी खामोशी से मिटा दिया। फिर एक दिन उसी दीवार पर देखा गया—

सच्चाई मिट नहीं सकती बनावट के उसूलों से,
कि खुशबू आ नहीं सकती कभी काग़ज़ के फूलों से।

माई ने उसे भी मिटा दिया और माई के दुश्मन चुप हो कर बैठ गये। लेकिन उस के दो-तीन दिन बाद उन्होंने देखा कि उसी दीवार पर माई ने न जाने किस से लिखवा दिया है— इस दीवार पर किसी क़िस्म की इश्तहारबाज़ी करना कानूनन मना है, खिलाफ़वर्ज़ी करने वाले को पुलिस के हवाले कर दिया जायगा।

लोग माई की कानूनदानी पर हैरान भी थे और अपनी सफलता पर खुश भी। माई ने कभी उन के कटाक्ष का जवाब इतना दिलचस्प और, अगर वे स्वीकार कर सकते तो, ऐसे शिष्ट तरीके से नहीं दिया था। लेकिन बहुत देर तक गली के 'मुदब्बर' यह मालूम न कर पाये कि माई ने वह ऐलान किस से और किस क़ीमत पर लिखवाया था। बहुत दिनों के बाद पता चला कि पूरे दो दिन और सब कारोबार छोड़ कर माई कई-कई घण्टे थाने के बाहर एक पेड़-तले बैठी सूत टेरती रही थी और आखिर पुलिस को अपने खर्च पर माई के मकान की उस दीवार पर लिखवाना पड़ा था— इस दीवार पर....

यह सुन कर उस विलायत-पास डॉक्टर साहनी ने एक रोज़ बातों-बातों में सरदार हिम्मत सिंह से कहा था, माई माया इस शहर की महात्मा गांधी है। और सरदार हिम्मत सिंह की पेशानी पर मोटे-मोटे बल पड़ गये थे, क्योंकि यह खताब उन्होंने शायद अपने लिए चुन रखा था।

हिम्मत सिंह एक रोज़ चन्दा लेने के बहाने माई के यहाँ गये थे।

माई ने उस का सारा लेक्चर सुन लेने के बाद कहा था, महात्मा जी ने तुम्हें यही सिखाया है कि इस तरह बूढ़ी, बेआसरा ग़रीब औरतों के गाढ़े पसीने की कमाई उन से बटोर कर गुलछर्रे उड़ाओ शराबें पीओ ? तुम सब से तो मैं ही अच्छी हूँ जो चुपचाप घर बैठी महात्मा जी की शिक्षा का पालन करती हूँ, चरखा कातती हूँ....

हिम्मत सिंह तौबा-तौबा करते लौट गये थे। और उसी शाम उन्होंने महात्मा गांधी की शिक्षा पर एक धुरन्धर भाषण देते हुए माई से अपनी भेंट का ऐसा नक़शा खींच दिखाया था कि भाषण ख़त्म होने से पहले जनता ने नारे लगाने शुरू कर दिये थे—सरदार हिम्मत सिंह ज़िन्दाबाद ! माई माया मुर्दाबाद ! इन्क़लाब ज़िन्दाबाद ! टोडी बच्चा हाय-हाय !

इस के बाद माई की गिनती क़स्बे की ख़ास हस्तियों में होने लगी थी।

•

एक बार सर छोटूराम दौरे पर आये और उन के स्वागत के लिए देहात के हज़ारों किसान डिंगा रेलवे स्टेशन पर जमा हुए। गाड़ी से उतरते ही सर छोटूराम ने जो छोटा-सा भाषण दिया उस में उन्होंने किसानों को साहूकारों और सूदख़ोरों के चंगुल से जल्द ही छुड़ा डालने का वायदा किया और इस सिलसिले में इलाक़े के दूसरे साहूकारों के साथ उन्होंने माई माया के नाम का ज़िक्र भी कर दिया।

उन दिनों माई का मकान बन रहा था।

माई को किसी जाट ने यह बता दिया होगा। माई चरखा छोड़ डाक-बंगले की ओर चल दी। सर छोटूराम उस समय बाहर एक पेड़ की छाँव में बैठे दूध पी रहे थे। एक हाँफती हुई वृद्धा को लड़खड़ाते

हुए क़दमों से अपनी ओर आता देख कर दूध का गिलास नीचे रख कर भागे-भागे उस के पास पहुँचे और झुक कर उस के चरण छू लिये। माई बोली, बेटा, मेरा नाम माई माया है और मैं उस छोटू से दो बातें करना चाहती हूँ। कहाँ है वह ? पास खड़े लोगों का कहना है कि सर छोटूराम मारे शर्म के पानी-पानी हो कर रह गये थे और माई उन की पीठ पर हाथ फेर रही थी और कहे जा रही थी, भगवान तुम्हें उस छोटू का ओहदा दिला दे। वह है कहाँ, मुझे उस से दो बातें करनी हैं।

सर छोटूराम उन दिनों प्रांत के वज़ीरे-ख़ज़ाना थे।

इस के बाद कुछ लोग कहते सुने गये कि बहादुरी में माई माया चाँद बीबी से कम नहीं !

सर छोटूराम ने न जाने क्या सफ़ाई पेश की होगी, लेकिन उस रोज़ के बाद माई का नाम क़स्बे के साहूकारों की सरकारी फ़ेहरिस्त से हटा दिया गया।

माई ने इस भेंट का ज़िक्र भाई मायादास के नाम अपने अगले पत्र में यों किया— कहने का मतलब यह है कि छोटूराम के पास किसी की सिफ़ारिश करवानी हो तो मुझे लिख देना, बहुत नेक आदमी है।

माई गली-भर में सब से सवेरे उठने के लिए मशहूर थी। औरतें अपने बच्चों को जागने के लिए आवाज़ें देतीं तो कहतीं, अरे बेटा, जागो न, उस चुड़ैल को उठे चार घण्टे हो गये। और फिर कुछ सोच कर कहतीं, राम-राम ! आज दिन न जाने कैसे गुज़रेगा, सुबह-सबेरे उस मनहूस का नाम ले लिया !

माई उठते ही सारे कमरों का को निरीक्षण करती। रात को सब

कमरों को ताले लगा कर तो सोती ही थी। एक कोठरी को छोड़ कर सब कमरे खाली पड़े थे। फिर भी जब तक एक-एक कमरे का दरवाज़ा खोल कर उस में झाँक न लेती उस की तसल्ली न होती। दरवाज़ों की खटाक-खटाक गली वालों के लिए अलार्म का काम देती।

बात मशहूर थी कि माई रात को कमरे गिन कर सोती थी और सुबह फिर उन्हें गिन कर क़दम घर से बाहर रखती।

इस गिनती के बाद माई अपने दौरे पर निकल पड़ती। सर पर एक छोटी-सी पोटली और बग़ल में क़ाग़ज़ों आदि का एक पुलिन्दा-सा, जिस में माई के जूते भी बँधे होते। और तन पर वही बरसों के बासी कपड़े। माई बहुत फूँक-फूँक कर क़दम रखती हुई चलती। और शाम को उसी तरह सर पर उस पोटली के बजाय घी की छोटी-सी मटकी और बग़ल में वही पुलिन्दा लिये उसी धीमी चाल से गली में से होती हुई घर वापस लौट आती। उसे देख कर ख़रग़ोश और कछुए की कहानी अनायास याद हो आती।

माई का इलाक़ा क़स्बे के चारों ओर फैले हुए देहात में था और बरसात के कुछ दिनों को छोड़ कर माई के दौरे में शायद ही कोई नाग़ा पड़ता हो।

लोग कहते, इस कंजूस को बीमारी भी नहीं आती। हैरान होते, माई कुछ खाती है न पीती, फिर किस चीज़ के बल-बूते पर दिन-रात इतनी मशक़्क़त करती फिरती है? गली की सभी औरतें आये दिन बीमार रहतीं, किसी-न-किसी को कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई तकलीफ़ ज़रूर रहती और हकीम ज़हूरूदीन के यहाँ सब का आना-जाना बना रहता। जब वे एक-दूसरे से मिलतीं तो अपनी बीमारियों और दवाइयों का ज़िक्र होता और फिर आख़िर में हमेशा बात ख़त्म इस आश्चर्य पर होती—'और एक यह चुड़ैल है कि इसे कभी कोई बीमारी ही नहीं

आती। जब से हम इसे देख रहे हैं वैसी-की-वैसी है। ख़ूराक यह नहीं खाती, दवा यह नहीं पीती, मन्दिर यह नहीं जाती, कड़कती धूप में नंगे पाँव न जाने कहाँ-कहाँ घूमती-फिरती है। और सर्दियों में वही फटी-पुरानी चादर ओढ़े रहती है, जिस में मुझे तो, मेरी बहना, एक दिन में निमोनिया हो जाय और ऊपर से इतनी बूढ़ी काया! मैं तो हैरान हूँ कि इसे मौत क्यों नहीं आती!'

और फिर इस हैरानी का समाधान दूसरी औरतें इन शब्दों में करतीं, 'अरे बाबा, इसे पैसे की गर्मी है, पैसे की। सब रोगों की एक दवा है, पैसा-पैसा!' इस का जवाब पहली औरत यों देती, 'ठीक है, लेकिन बेईमानी का पैसा जाने इसे फलता कैसे है? और फिर मैं पूछती हूँ, इतना जो कमा रही है, आख़िर किस लिए? न कोई आगे, न कोई पीछे। अगर आज इसे कुछ हो जाय तो एक गिलास पानी तो इसे कोई देगा नहीं। ऐसे पैसे पर भी ला'नत है। नहीं?

और आख़िर एक रोज़ गली में ख़बर फैल गयी कि माई को बुख़ार है। औरतों ने मानो चैन की साँस ली। घर-घर में इस बात को ले कर अन्दाज़े लगाये जाने लगे कि कितने रोज़ माई बीमार रहेगी और कब उस का देहान्त होगा। किसी को उस की बीमारी का कोई ग़म नहीं था। मकान का दरवाज़ा हमेशा बन्द रहता और लोग सोचते, इसी तरह अन्दर पड़ी-पड़ी चल देगी और उन्हें पता भी नहीं चलेगा। सोचते, अच्छा ही होगा कि जो जैसा करता है, वैसा भरता है।

शायद उन का यह ख़याल ठीक ही निकलता। लेकिन माई की बीमारी के दूसरे रोज़ सुबह-सबेरे गली वालों ने देखा कि माई के दरवाज़े पर एक नौजवान बैठा हुक़्क़ा पी रहा है। उस के रंग-ढंग और पहरावे से साफ़ पता चलता कि वह देहात का कोई मुसलमान है।

गली हिन्दुओं की थी। मुसलमान उस में से आते-जाते गुज़रते ज़रूर थे और माई के मकान पर तो पहले भी जाट लोगों का आना-जाना रहता ही था। लेकिन उस नौजवान के बैठने का अन्दाज़ कुछ ऐसा था, जैसे यही उस का घर हो। नौजवान ख़ूबसूरत था और उस की मूँछों के ताव और उस की बड़ी-बड़ी चमकदार, गुलाबी-सी आँखों से रोब टपकता था। उस का लिबास भी बहुत साफ़-सुथरा था और हुक़्क़ा बिलकुल नया। साफ़ पता चलता था कि वह माई की देख-भाल के लिए वहाँ बैठा था और शायद उस की हफ़ाज़त के लिए भी।

उसे देख कर गली वालों की पहली प्रतिक्रिया तो यह हुई कि माई धर्मभ्रष्टा हो गयी है। अब इस मुसल्ले के हाथ से खाये-पीयेगी। अगर इस ने गली में किसी से बना कर रखी होती तो आज यह दिन क्यों देखने पड़ते ? फिर उन की सोच ने एक करवट और ली और उन्हें महसूस होने लगा, जैसे वह मुसलमान गली के हिन्दुओं, बल्कि हिन्दू-धर्म के मुँह पर एक तमाचा हो। जैसे उसे इस तरह बुला कर माई ने सारी गली की नाक काट खाने की कोशिश की हो। कम-से-कम उस ने उन्हें मौक़ा तो दिया होता। वह ख़ुद बुरी सही, लेकिन इस का यह मतलब तो नहीं कि गली वालों के मन में दया नहीं। अगर वे उस की देख-भला न करते तब तो बात भी थी।

ऐसी विपद के समय तो इंसान दुश्मन को भी गले लग लेता है और वह तो आख़िर उन की पड़ोसिन थी, हिन्दू थी, बूढ़ी थी, बे आसरा थी।....यह सोचते-सोचते गली वालों को महसूस होने लगा कि माई ने जान-बूझ कर उन की मनुष्यता और हिन्दुत्व का निरादर किया है और उन्हें कोई भला काम करने से रोक कर जैसे उन्हें किसी घोर पाप का भागी बना दिया हो।

चुनांचे गली-भर में इस विषय पर खुसर-फुसर होने लगी। कोई उस नौजवान का नाम नहीं जानता था, इसलिए सभी उसे मुश्टंडा ही कहते। किसी ने कभी उसे पहले देखा नहीं था। माई के घर मुसलमान आते ही रहते, लेकिन हिन्दू औरतें भला मुसलमान मरदों की ओर क्यों देखतीं? माई माया तो उन का सूद खाती थी, दूसरे शब्दों में उन का खून चूसती थी और अगर उस की उमर एक सीमा से बिल्कुल बाहर न होती तो उस पर गलीवाले और भी कई आरोप लगा देते। शायद बहुत भीतर कहीं गली वालों को माई के खिलाफ़ एक शिकायत यह भी हो कि उस की बुज़ुर्गी के कारण वे उस पर वह दिलचस्प दोष लगाने से वंचित रह गये थे— वह मुश्टंडा किसी सूरत में भी माई का प्रेमी साबित नहीं किया जा सकता था।

अब सवाल यह था कि कैसे उसे वहाँ से उठवाया जाय। गली की बदनामी के अलावा वैसे भी वह लम्बा-तड़ंगा मुसलमान जाट माई की दहलीज पर घुटनों तक तहमद चढ़ाये बैठा, हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ, मूँछों पर ताव देता हुआ, गली में से आती-जाती हर हिन्दू देवी की ओर घूर-घूर कर देखता हुआ गली की शराफ़त के लिए एक भारी खतरे से कम नहीं था।

सो, दो-तीन ही दिनों में गली वालों की निगाह में माई की बीमारी और उस मुश्टंडे की मौज़ूदगी का आपसी सम्बन्ध बिल्कुल कट कर रह गया। माई को इतने दिनों से किसी ने देखा नहीं था और न ही उस के चिल्लाने-कराहने की किसी को कोई आवाज़ आती थी। और अगर वह वाक़ई बीमार थी तो उस का इलाज उस मुसल्ले मुश्टंडे के इस तरह बीच गली में बैठ कर हुक्का पीने और गली की औरतों पर बुरी नज़रें डालने से तो नहीं हो सकता था। हर लिहाज़ से उस की मौज़ूदगी गली वालों के लिए आपत्ति जनक थी।

फिर भी किसी की हिम्मत न होती कि बढ़ कर उसे वहाँ से उठ जाने के लिए कहता। आख़िर फ़ैसला यह हुआ कि गली के सब मर्द इकट्ठे हो कर उस के पास जायें और एक-दो मिनट की सलाम-दुआ के बाद उस से साफ़ शब्दों में कह दें कि....कि....लेकिन वे 'साफ़ शब्द' किसी को सुझाई न देते।

फिर एक और फ़ैसला हुआ। क़स्बे का थानेदार उन दिनों एक हिन्दू था और उस का बहुत दबदबा था। काली घोड़ी पर सवार जब कभी वह क़स्बे की गश्त के लिए निकलता तो लोगों के दिल दहल जाते। सरदार हिम्मत सिंह के सिवा सभी लोग उस से बहुत डरते थे और हिम्मत सिंह इलाक़े का नामी कांग्रेसी होने के बावज़ूद उस का दोस्त था। कांग्रेस में भरती होने से पहले हिम्मत सिंह और थानेदार साहिब हम-निवाला और हम-प्याला हुआ करते थे। हिम्मत सिंह की मशहूरी की एक बड़ी वजह यह भी थी कि किसी ज़माने में वह दस नम्बरी बदमाश हुआ करता था। ख़ैर, गली वालों ने फ़ैसला किया कि कुछ लोग जा कर थानेदार साहब से दरख़्वास्त करें कि अगर वह मुश्टंडा मुसलमान उसी तरह कुछ रोज़ और वहाँ बैठा रहा तो क़स्बे में हिन्दू-मुस्लिम फ़साद हो जाने का अन्देशा है। यह सुझाव सब को पसन्द आया और एक रोज़ गली वालों ने उस विलायत पास डाक्टर साहनी को वफ़्द (प्रतिनिधि मंडल) की रहनुमाई करने पर राज़ी कर लिया।

थानेदार साहब और डॉक्टर साहनी के बीच क्या बात हुई, यह तो किसी को मालूम नहीं। लेकिन दूसरे ही रोज़ एक सिपाही माई माया के दरवाज़े पर उस मुश्टंडे के पास खड़ा हुआ देखा गया। सिपाही गली के बच्चों के लिए हवाई जहाज़ का-सा आकर्षण रखता था, हालाँकि हवाई जहाज़ बहुत कम दिखाई देता था और सिपाही हर रोज़। सिपाही के इर्द-गिर्द एक भीड़ जमा हो गयी। और जो तकरार

वहाँ हुई, उस का लुब्बो-लुबाब यह कि उस मुश्टंडे ने न सिर्फ़ वहाँ से उठने से साफ़ इनकार कर दिया, बल्कि उस ने सिपाही को मकान के अन्दर क़दम तक न रखने दिया कि वह माई को बराहेरास्त थानेदार साहब का हुक्म सुना सके। वह बस यही कहता रहा, जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, कोई इस मकान में क़दम नहीं रख सकता और न ही किसी के कहने या धमकाने से मैं यहाँ से हिल सकता हूँ, सरकार जो चाहे कर ले।

बात यह रुख़ भी ले सकती है, इस का किसी को गुमान तक नहीं था। सिपाही बहुत बिगड़ा, गली वालों ने उसे और उकसाया और आख़िर वह मुँह फुलाये वापस थानेदार साहब के पास चल पड़ा। जाते हुए कह गया, अभी वारंट ले कर आता हूँ, सारी अकड़फूँ निकल जायेगी जब जूते पड़ेंगे वहाँ! जवाब में उस मुश्टंडे ने दाहिना हाथ अपने चेहरे पर फेर कर कहा कि मैं तुम्हें समझ लूँगा!

लोग हैरान थे कि अब क्या होगा।

वारंट बनने में कुछ देर हो गयी होगी। एक-दो घंटे बीत गये, लेकिन सिपाही वापस नहीं लौटा। लोग-बाग इधर-उधर बिखर गये। गली की फ़िज़ा से यों लगने लगा, जैसे सारा मज़ा किर-किरा हो कर रह गया हो।

दोपहर की गाड़ी का समय होने को था। क़स्बे का सारा काम-काज गाड़ियों के आने-जाने के समय के अनुसार चलता था, क्योंकि रेलवे-स्टेशन कुछ इस तरह से था कि गार्ड की सीटी की आवाज तक घर-घर पहुँचती थी और बहुत-से मकानों की छतों पर से तो गाड़ी दिखायी भी दे जाती थी। सर्दियों में प्रायः लोग दोपहर की गाड़ी देखने छतों पर चढ़ जाया करते थे। कहा जा सकता है कि गाड़ियाँ देखना क़स्बे वालों की हॉबी थी।

तो दोपहर की गाड़ी आने के कुछ ही देर बाद दो सिपाही फिर माई के दरवाज़े पर आ खड़े हुए और उस मुश्टंडे को डराने धमकाने लगे। वारंट शायद वे अब भी नहीं ला पाये थे और न ही उन के पास हथकड़ियाँ थीं। गली वाले फिर आ जमा हुए और तमाशा देखने के साथ-साथ उन सिपाहियों की मौजूदगी का फ़ायदा उठाते हुए उस मुश्टंडे पर आवाज़ें भी कसने लगे! और वह मुश्टंडा अब अजीब शशोपंज में पड़ गया दिखाई दे रहा था। बार-बार एड़ियाँ उठा कर गली के उस सिरे की ओर देखता जो स्टेशन की ओर जाता था।

सिपाही अब बातों से बढ़ कर हाथों का इस्तेमाल भी किया चाहते थे और वह नौजवान बड़ी लापरवाही से उन के हाथ वगैरा झटक रहा रहा था और उन सब से परे स्टेशन की दिशा में यों देख रहा था, जैसे अपनी सहायता के लिए आ रही कुमक की प्रतीक्षा कर रहा हो।

फिर अचानक भीड़ में खलबली-सी मच गयी। सब लोगों के मुँह दूसरी ओर मुड़ गये। सामने से माई माया सिर पर एक गन्दी सी पोटली टिकाये, धीरे-धीरे, फूँक-फूँक कर कदम रखती-उठाती, एक अपने ही जैसे बूढ़े आदमी का हाथ थामे दरवाज़े की ओर बढ़ती चली आ रही थी।

वह बूढ़ा माई का भाई मायादास था। और वे दोनों दोपहर की गाड़ी से वापस लौटे थे। ज़ाहिर है कि गली वाले और दोनों सिपाही अपना-सा मुँह ले कर रह गये। वह मुश्टंडा बहुत देर ज़ोर-ज़ोर से हँसता रहा।

माई माया और भाई मायादास बरसों तक उस मकान में इकट्ठे ज़िन्दा रहे, इतने बरसों तक कि गली वालों ने कहना शुरू कर दिया कि माई और उस का भाई, दोनों अमर हैं।

●

अपना मकान

देखने-सुनने में तो वह उस समय भी एक घटिया क़िस्म का मालिक-मकान प्रतीत होता था, जब उस के पास रहने को केवल एक पिचकी हुई मयानी थी, जिस में वह और उस की पत्नी घुटनों के बल भी मुश्किल से चल पाते होंगे और जिस में प्रवेश करते ही हर अपरिचित व्यक्ति औंधे मुँह सजदे में जा गिरता था।

उस का नाम दीनदयाल था, इसलिए लोग उसे लाला दीनदयाल कह कर बुलाते थे। नाम बता देने के पश्चात् उस का चेहरा-मोहरा बताने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रहती, क्यों कि दो-तीन बार मन-ही-मन दीनदयाल का जाप करने से इस शुभ नाम का स्वामी अपनी थरथराती तोंद, चमचम करती गंजी चाँद, कचकचाते चिकने-चुपड़े चेहरे और मैले-चिकट कपड़ों के संग हमारे सम्मुख आ खड़ा होता है और जी चाहता है कि छूटते ही एक कसा हुआ घूँसा उस की तोंद में घोंप दें, फिर उस की चाँद पर हाथ फेरते हुए उस से शुद्ध घी का भाव पूछें, और फिर उस का उत्तर सुने बग़ैर ही अपनी नाक दबा कर भाग खड़े हों।

इस नाम और आकार-प्रकार के व्यक्ति के रहन-सहन का अनुमान भी भली-भाँति लगाया जा सकता है, क्योंकि उस का ध्यान आते ही

नून, तेल, हल्दी इत्यादि की एक बूदार सूची हमारे मस्तिष्क में कौंध जाती है। यदि हम चाहें, तो यह भी सोच सकते हैं कि इस दीनदयाल की पत्नी का कोई नाम होगा, तो भागवंती होगा, और उन के बच्चों के नाम कुछ भी हों, वे सब बड़े हो कर बनेंगे दीनदयाल या भागवंती।

सो, जिन दिनों लाला दीनदयाल अपने परिवार-सहित उस पिचकी हुई मयानी में रहा करते थे, मेरी पत्नी और मैं प्रायः रात को सोने से पूर्व उन के बखिये उधेड़-उधेड़ कर सीते रहते थे, ताकि अगले रोज़ उन्हें फिर उधेड़ सकें। यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि मेरी पत्नी को हर शुद्ध भारतीय पत्नी की तरह अपने पड़ोसियों से असीम प्यार है, जिस के फलस्वरूप, वह अवसर पाते ही उन्हें आड़े हाथों लेती है। अतः रात को दाल-रोटी से निबट लेने के बाद जब हम इकट्ठे बैठते हैं, अर्थात् वह बर्तन साफ़ कर रही होती है और मैं छोटे को सुला रहा होता हूँ, तो वह चमक-चमक कर सब पड़ोसियों का नाकों दम कर देती है और दुनिया-भर की शिकायतें मुझे सुनाती है। और मैं एक पत्नी व्रत पति की तरह चुपचाप उन्हें सुनता-समोता रहता हूँ और 'हूँ-हाँ' करता रहता हूँ। समय बीत जाता है। पत्नी खुश हो जाती है कि उसे ऐसा सुशील पति प्राप्त हुआ। और मैं ख़ैर मानता हूँ कि एक दिन और शांति से टल गया, क्योंकि जिस दिन उस भागवान के पास इस प्रकार की कोई सामग्री नहीं होती तो उस का सारा नज़ला मुझी पर गिरता है और फिर जो होता है, सभी सहृदय और अनुभवी लोग जानते हैं। पत्नी की चोटें किसे नहीं झेलनी पड़तीं !

लाला दीनदयाल एक बैंक में नौकर थे, अब भी हैं। और मैं एक दूसरे बैंक में। अंतर केवल इतना है कि उन्हें यह नौकरी करते हुए एक उमर बीत चुकी है और मैं किसी सूरत भी अपनी उमर इस नौकरी

में नहीं बिता पाऊँगा। कारण यह है कि छै साल की लम्बी अवधि के बाद भी बैंक का काम मेरी समझ से कहीं ऊपर या नीचे या इधर-उधर है और प्रतिक्षण खटका लगा रहता है कि....परन्तु वह तो जब होगा, देखा जायगा, अभी तो जो हो गया है, उसी ने जीना दूभर कर दिया है।

हुआ यह कि कई साल से मेरी छुट्टियाँ इकट्ठी हुई पड़ी थीं और इन गर्मियों में हम ने तीन महीनों के लिए अपना बोझ पत्नी के मैके वालों पर डाल देने का निश्चय किया। सोचा, इस तरह जो बचत और प्राप्ति होगी, उस से सर्दियों के लिए कुछ कपड़े बनवा लेंगे। सो, मेरी पत्नी ने कई दिन पहले ही गली-भर में धूम मचा दी कि अब की हमारी गर्मियाँ पहाड़ों पर कटेंगी। बेचारी ने सिवाय शिमला के और किसी स्थान का नाम सुना नहीं था, अतः अपने कुछ एक पड़ोसियों के ख़याल में हम शिमला जा रहे थे, यद्यपि हमारी असली मंज़िल उस के बिल्कुल उल्टी दिशा में थी। परन्तु वहाँ पहुँच कर हमारी सब आशाओं पर पानी फिर गया। न तो कोई बचत ही हुई और न कुछ प्राप्ति ही। दोनों तरफ़ का किराया पल्ले से ख़र्च करना पड़ा। और अतिथि-सत्कार ऐसा हुआ कि डेढ़ ही महीने बाद हमें वहाँ से भागना पड़ा।

घर पहुँच कर अभी सीढ़ियों पर कदम रखा ही था कि किसी ने कहा—"लाला दीनदयाल मयानी छोड़ गये!"

मैं तो खुश हुआ ही, पर पत्नी की तो बाँछें खिल गयीं, मानो लाला जी दुनिया ही छोड़ गये हों।

परन्तु दूसरे ही क्षण किसी ने कहा "लाला दीनदयाल ने पीछे इसी गली में अपना मकान बनवा लिया है!"

मुझे आश्चर्य कम हुआ और अफ़सोस अधिक। लेकिन मेरी पत्नी

का चेहरा तो यह सुनते ही यों मुरझा गया, जैसे नाज़ुक फूल ज़रा से में मुरझा जाय। सीढ़ियाँ चढ़ने के बजाय वह वहीं बैठ गयी और खुले होंठों और फटी आँखों से मेरी ओर देखने लगी। मैं ने कहा, "ऊपर नहीं चलोगी ?"—तो उस के मुँह से चीख निकल गयी और देखते-ही-देखते आस-पास की सभी औरतें हमारे गिर्द आ जमा हुईं। मेरी पत्नी को शायद कोई दौरा पड़ गया था। प्याज़ सुँघाया गया, पानी छिड़का गया और जूती सुँघाने की सोच ही रहे थे कि उस ने आँखें दीं और मेरी ओर देख कर बोली—"देखा ?"

मैं कुछ समझा नहीं कि वह मुझे क्या दिखाना चाहती है। विस्मित सा उसी को देखता रहा।

फिर वह एक झटके से उठी और मुझे बाहर की ओर घसीटने लगी। सड़क पर पहुँच कर बोली, "चलो, उस का मकान देख आयें !"

तब मुझे उस की दुर्दशा का कुछ आभास हुआ, परन्तु....

मकान की ओर संकेत करते हुए वह फिर बोली, "देखा ?"

मैं ने चुपचाप हाँ में सर हिला दिया और मकान के बजाय अपनी पत्नी को देखने लगा, क्योंकि उस समय उस की शक्ल ही देखने योग्य थी।

सामने लाला दीनदयाल लँगोट बाँधे, ईंटों के पास खड़े, उन की गिनती कर रहे थे। मेरी पत्नी बुत बनी, गुमसुम खड़ी मकान की ओर देखती चली जा रही थी, जैसे कुतुब मीनार देख रही हो। मैं ने धीरे से कहा, "चलो, भाई घर चलें," तो वह दौड़ कर मकान के अन्दर घुस गयी और मैं असमंजस में पड़ गया कि उसे क्या हो गया है।

उसी समय लाला दीनदयाल जी अपनी ओर आते दिखायी दिये। उन का चेहरा अनगिनत मुस्कराहटों में बँटा हुआ था और वह

यों बढ़ते चले आ रहे थे, जैसे निकट आते ही मुझे अपने पेट से लगा लेंगे। मैं ने इस से बचने के लिए दूर ही से हाथ जोड़ दिये। और दो कदम पीछे हट गया और कहा, "बधाई हो!"

वह बोले, "अन्दर तो आओ, अभी देखा ही क्या है!"

अन्दर भी जाना पड़ा। देखा कि उन की पत्नी छिपकली बनी एक दीवार से चिपकी हुई है और सफ़ेदी कर रही है। और उन के तीनों बच्चे फ़र्श रगड़ रहे हैं। मेरी अपनी पत्नी का चेहरा यह सब देख कर और भी पीला पड़ गया और उस की आँखों में आँसू उतर आये। मैं ने हिम्मत से काम लेते हुए उसे फिर कहा, "चलो न!"

वह बिदक कर परे जा पड़ी। न जाने किस सोच में थी वह।

लाला दीनदयाल ने हमें मकान का कोना-कोना दिखाया और वह सब कुछ बताया, जो हर नया मालिक मकान अपने हर मित्र और शत्रु को को बताता है। ज़मीन किस भाव मिली, उस की रजिस्ट्री में कितने दिन लगे, द्वार किस लकड़ी के बने हुए हैं, ईंट किस भट्टे से मँगवायी गयी, दीवारों की मोटाई कितनी है, अगले पाँच वर्षों में मकान की क्या शक्ल होगी, कितनी किराया आयगा, आदि आदि।

मैं सुनता रहा और मेरी पत्नी भुनती रही।

घर पहुँचने तक वह फुँकारती रही। घर पहुँचते ही उस ने बच्चों को निकाल बाहर किया और कूल्हों पर हाथ रख कर यों खड़ी हो गयी, जैसे मरने-मारने पर तुली हो।

"हम भी मकान बनवायँगे!"

"पागल हो गयी हो!"

उत्तर में उस ने यों देखा, जैसे कहना चाहती हो, कि अभी तो नहीं हुई, लेकिन यदि किसी कारणवश मकान न बन सका, तो—

"वे बनवा सकते हैं, तो क्या हम नहीं बनवा सकते!"

"वे कौन ?"

"वे ही और कौन ?"

"अरे छोड़ो उन को, वे तो बनिये...."

"बनिये क्या बुरे हैं ? हम से तो वही अच्छे...."

"उस का नाम तो देखो, लाला दीन...."

"मैं मज़ाक़ नहीं कर रही !"

"वह तुम कर ही नहीं सकती !"

"तो फिर सुन लो, अगर मकान न बना तो...."

"मकान न हो गया, फटे हुए जूते हो गये ! ऊँह !"

"मैं कह रही हूँ, जब तक मकान नहीं बनता, मेरा मुँह सीधा नहीं होगा।"

"पहले ही कौन-सा सीधा है !"

मैं बहुत थका हुआ था। वह रोने लगी। मैं सो गया। उस दिन बात वहीं ख़त्म हो गयी।

दूसरे दिन बात फिर उठी।

"अपने मकान के कितने सुख हैं !"

"कितने ?"

"जिस के पास अपना मकान नहीं, उस की भी कोई ज़िन्दगी है !"

मैं चुप रहा।

"मकान है, तो जहान है !"

मैं उठ कर बाहर चला गया।

तीसरे दिन फिर बात उठी।

"क्यों जी, तुम बैंक पैदल नहीं जा सकते ?"

"साइकिल जो है।"

"उसे मैं बेच डालना चाहती हूँ।"

"क्यों?" मैं ने तड़प कर कहा। फिर उस के चेहरे की ओर देखा और दंग रह गया, वहाँ मोटे अक्षरों में लिखा था, 'मकान बनवाऊँगी!'

अब मेरी पत्नी का सारा-सारा दिन लाला दीनदयाल की पत्नी के सत्संग में कटता है। और उस ने मकान बनवाने के ऐसे-ऐसे गुर सीख लिये हैं कि तौबा भली! साइकिल वाक़ई बिक चुकी है। बस के लिए मुझे एक पाई नहीं मिलती। हर रोज़ सुबह दो आने मेरी जेब में डाल दिये जाते हैं और शाम को वही दो आने सही-सलामत वापस ले लिये जाते हैं। कभी एक पैसा इधर-उधर हो जाय, तो बीसियों बहाने निकालने पड़ते हैं। दोस्तों-यारों का स्वागत-सत्कार कुछ इस विधि से होने लगा है कि सब-के-सब दुश्मन बनते जा रहे हैं। दोनों वक़्त का खाना सुबह आठ बजे बन जाता है। दाल एक-दो दिन छोड़ कर बनती है, सब्ज़ी का ज़िक्र तक ज़बान पर नहीं आने दिया जाता। बच्चों को स्कूल से उठवा लिया गया है और अब उन की शिक्षा-दीक्षा का कार्य लाला दीनदयाल जी ही करते हैं। जब कभी लड़के बेचारे पैसे-दो-पैसे के लिए हाथ फैलाते हैं, तो पत्नी की आँखों में ख़ून उतर आता है, मुट्ठियाँ कस जाती हैं और दाँत पीस कर कहती है, "मर जाओ तुम! तुम न होते, तो मकान कब का बन गया होता!"

वह स्वयं कुछ ऐसी वेश-भूषा बनाये रहती है कि कई बार शक हो जाता है कि मैं कहीं भूल कर लाला दीनदयाल के घर तो नहीं जा घुसा!

कल की बात है। हम रद्दी बेचने बाज़ार जा रहे थे, बाज़ार इसलिए कि पत्नी कहती है, 'गली वाले लूट लेते हैं।'

चौक में एक लड़का वज़न तोलने की मशीन सामने रखे आवाज़

लगा रहा था—दो पैसों में, वज़न देखिए, दो पैसों में !

मैं ने सोचा, देखूँ तो कितना वज़न मकान की नज़र हो चुका है ! सो, रद्दी का पुलन्दा नीचे फेंक कर मशीन पर चढ़ खड़ा हुआ। लेकिन पत्नी ने लपक कर मुझे नीचे खींच लिया और ऐसी आँखें दिखायीं कि मशीन वाला पैसे माँगना भूल गया।

जब मैं ने झुँझला कर पूछा, "क्या है ?" तो झिड़कते हुए वह बोली, "एक तरफ़ तो कमरा छोड़ कर हम मयानी में जा रहे हैं और दूसरी तरफ यह फ़जूलखर्ची !"

मैं सर पकड़ कर रह गया। मयानी में चले जाने का फ़ैसला न जाने उस ने कब कर लिया था !

लछमन सिंह

इस से पूर्व लछमन सिंह मेरे मित्र अनिल के यहाँ काम करता था। और उस से पूर्व वह एक ढाबे में नौकर था। वैसे उस से पहले लछमन सिंह कनाट प्लेस में कॉफ़ी हाऊस के सामने बैठ कर बूट पालिश किया करता था।

लछमन सिंह यों तो खाना भी अच्छा पकाता है, घर की झाड़-पोंछ भी खूब कर लेता है। बच्चों की देख-भाल ऐसी करता है कि वह माँ को भूल जायें। परन्तु बूट पालिश करने में तो क़रीब-क़रीब लाजवाब है। उस के पालिश किये हुये बूट शीशे की तरह चमकते हैं।

पालिश करते समय लछमन सिंह अपनी सुध-बुध भूल जाता है। सब से पहले वह बूटों को अच्छी तरह साफ़ करता है, फिर उन पर पालिश का लेप करता है। फिर बारी-बारी बहुत ही हौले-हौले उन पर बुरुश फेरता है और कितनी ही देर तक फेरता रहता है, जैसे कोई बुढ़िया किसी सुकुमार शिशु के सिर पर हाथ फेर रही हो। फिर एक बूट को उठा कर उसे अपने दायें घुटने में फँसा लेता है और कपड़े

का एक छोटा-सा टुकड़ा उस की 'टो' पर रगड़ने लगता है। पहले धीरे-धीरे, फिर तेज़-तेज़। रगड़ते-रगड़ते कभी उस की जीभ मुँह से बाहर निकल जाती है तो कभी उस के दाँत पिसने लगते हैं और कभी वह किसी फ़िल्मी गाने की धुन यों गुनगुनाने लगता है, जैसे किसी भागती हुई गाड़ी की रफ़्तार से मुकाबिला कर रहा हो। लछमन सिंह का दावा है कि एक जोड़ा बूट पालिश करने के लिए उतनी ही मेहनत और अक़्ल दरकार है, जितनी कि उसे तैयार करने के लिए।

एक दिन मेरे मित्र अनिल ने उस से पूछा था, "लछमन सिंह, तुम ने बूट पालिश करने का काम छोड़ क्यों दिया?....तुम तो इस काम में आर्टिस्ट हो, आर्टिस्ट...."

लछमन सिंह ने मुस्करा कर जवाब दिया था—उस का हर वाक्य मुस्कराहट से लिपटा रहता है, "भाई साहब, एक दिन यों ही दिल में एक विचार उठा, कि लछमन सिंह, तू सारी उम्र लोगों के जूतों को ही हाथ लगाता रहेगा?....बस, इस विचार के आते ही मैं ने बूट पालिश करने का काम छोड़ दिया और उस ढाबे में नौकरी कर ली।........ लछमन सिंह मौजी आदमी है, भाई साहब!"

फिर लछमन सिंह ने अनिल को बताया कि बूट पालिश करने से पहले वह एक गराज में कारें धोने का काम किया करता था। वहीं उसकी दोस्ती एक साहब से हो गयी, जिस की कार प्रायः उस गराज में सफ़ाई के लिए जाया करती थी। एक दिन उस साहब ने खुश हो कर दस रुपये का एक नोट निकाल कर उस के हाथ पर रख दिया था, जिस से लछमन सिंह उस साहब पर इतना मोहित हो गया था कि उसी समय उस ने उस साहब के पाँव पकड़ लिए थे।

"मैं ने कहा, 'साहब, नौकरी ही करनी है, तो आप की करूँगा।' साहब पहले तो चकराया, परन्तु तबीयत का हरा था। हँस कर बोला,

'आल राइट' !....बस, उसी समय मैं साहब की कार में बैठ कर उस के घर चला गया। महीना ख़त्म होने में कुछ दिन बाकी थे। साहब कहता रहा, 'लछमन सिंह, यह महीना तो पूरा कर ही लो इस गराज में, क्यों इतने दिनों की तनखाह गँवाते हो ?' लेकिन मैं ने कहा, 'साहब, लछमन सिंह मौजी आदमी है। वह पैसे का गुलाम नहीं'।"

अनिल ने पूछा, "फिर उस साहब को नौकरी क्यों छोड़ दी ? कोई झगड़ा हो गया था क्या ?"

लछमन सिंह हँस कर बोला, "नहीं, भाई साहब, झगड़ा करना तो लछमन सिंह ने सीखा ही नहीं। बात दरअसल यह हुई भाई साहब, कि वह साहब हर रोज़ शराब पीता था और देर तक नशे में बकता-झकता रहता। एक रोज़ उस ने मुझे भी गाली दे दी। वैसे उस की मेम भी मुझे पसन्द नहीं थी। हमेशा नाक-भौं चढ़ाये रहती। मैं ने सोचा, 'लछमन सिंह, नौकरी ही करनी है, तो इज़्ज़त से कर। तुझे क्या ? कोई साहब है, तो अपने घर का !' बस, भाई साहब, उसी रोज़ मैं ने साहब के सामने हाथ जोड़ दिये। बेचारा बहुत परेशान हुआ। बोला, लछमन सिंह, तुझे क्या तकलीफ़ है यहाँ ? तनखाह कम है, तो पाँच-दस और ले लो।' मैं ने हाथ जोड़ कर जवाब दिया, 'नहीं साहब, यों ही मन की मौज है। मैं अब यहाँ नहीं रह सकता।' साहब समझ गया, लछमन सिंह मानेगा नहीं। हँस कर बोला, 'तनखाह का हिसाब मेम साहब से कर लेना। यह रहा तुम्हारा इनाम।' दस-दस रुपये के दो नोट थे, मैं ने ले लिये। उसी दिन थोड़ी देर बाद मेम को पता चला, तो साहब से अंग्रेजी में कुछ कहने लगी। मैं ने सुन लिया। भले ही अंग्रेज़ी नहीं जानता, लेकिन मतलब तो आप की दुआ से समझ ही लेता हूँ। मैं उसी समय बाज़ार गया और पैंतीस रुपये की एक बेबी साइकल खरीदी और दुकानदार से एक काग़ज

पर लिखवाया, 'फराम लछमन सिंह टू जिमी'। और ला कर साहब के छोटे बच्चे के हवाले करते हुए कहा, 'यह लछमन सिंह का तोहफ़ा है।' साहब और मेम दोनों हैरान, परेशान।....अब भी जब कभी राह चलते देख लेते हैं, तो कार खड़ी कर के मिलते हैं। कोई यह नहीं कह सकता, भाई साहब, कि लछमन सिंह पैसे का ग़ुलाम है!"

स्वयं अनिल के साथ लछमन सिंह की दोस्ती इसी अजीब और फ़ौरी ढंग से हो गयी थी। शादी से पहले अनिल प्रायः उस ढाबे में खाने के लिए जाया करता था। एक दिन बैठा ही था कि लछमन सिंह पास आ कर राज़दाराना लहजे में बोला, "साहब, आज रोग़नजोश अच्छा नहीं, कुछ और खा लीजिए।"

अनिल को यह बात बहुत पसन्द आयी। खाना खाने के पश्चात उस ने एक चवन्नी लछमन सिंह को टिप के रूप में देनी चाही तो लछमन सिंह कुछ इस अन्दाज़ में मुस्करा दिया, जैसे कह रहा हो, 'इस की क्या ज़रूरत है, भाई साहब?....' लछमन सिंह ने चवन्नी नहीं ली और अनिल उस का मित्र बन गया!

अनिल की शादी में लछमन सिंह बरातियों में से एक था।

शादी के कुछ रोज़ बाद अनिल बीते दिनों की याद ताज़ा करने एक दिन उसी ढाबे में खाना खाने गया, तो शकुन्तला उस के साथ थी। लछमन सिंह ने तपाक से दोनों को नमस्कार किया और बोला, "भाई साहब, भाभी तो चुन कर ली है आप ने।"

शकुन्तला को ढाबे के नौकर की यह आत्मीयता बिलकुल न जँची। लछमन सिंह भाँप गया। मुस्करा कर बोला, "भाई साहब, इन से कह दो ना कि हम आप के पुराने दोस्तों में से हैं!"

खाना खाने के पश्चात् अनिल ने पैसे निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, तो लपक कर लछमन सिंह ने उस का हाथ पकड़ लिया,

"नहीं-नहीं, भाई साहब, यह नहीं होगा ! आज का खाना मेरी तरफ़ से था ।"

शकुन्तला की भवें और भी तन गयीं । लेकिन उन दोनों के आग्रह के बावजूद लछमन सिंह ने उस रोज़ अनिल को पैसे न देने दिये ।

और शायद उसी रोज़ बाद में लछमन सिंह ने अनिल से कहा, "भाई साहब, एक बात कहूँ । इस ढाबे का मालिक बहुत हरामी है साला । हर चीज़ में बेईमानी करता है । और लछमन सिंह का बेईमान आदमी के साथ एक दिन भी नहीं चल सकता । अगर भाभी मान जायँ तो आप मुझे अपने पास रख लें ।"

अनिल ने कुछ संकोच दिखाया तो लछमन सिंह बोला, "भाई साहब, इस में सोचने की कौन-सी बात है ? दो टाइम खाना खाऊँगा और आप दोनों की जी-जान से सेवा करूँगा । तनखाह की आप कोई चिन्ता न करें । कुछ बचे, तो दे दें । मुझे कौन-सा कुनबा पालना है !"

जब मैं लछमन सिंह से मिला, तो उसे अनिल के घर काम करते हुए करीब एक साल हो चला था । और इस अर्से में, बकौल लछमन सिंह, अनिल काफ़ी तबदील हो गया था, जिस की बेश्तर ज़िम्मेदारी उस ने शकुन्तला के सिर मढ़ी थी । उस ने बताया कि शुरू-शुरू में अनिल को भाई साहब और शकुन्तला को भाभी कह कर पुकारता । और अनिल बिलकुल बुरा न मानता था ।

"इस में बुरा मानने की बात ही क्या है, भाई साहब ? लछमन सिंह तो शुरू से ही हर एक को भाई साहब कहता आया है ।"

परन्तु शकुन्तला के टोकने पर उसे अनिल को भाई साहब के बजाय और शकुन्तला को भाभी के बजाय बीबी जी कहकर बुलाना पड़ा था ।

"यह ठीक है, भाई साहब, कि नौकर मालिक को साहब कह कर बुलाते हैं । लेकिन हमारे सम्बन्ध तो कुछ और किस्म के थे । फिर

भी मैं बुरा नहीं मानता, अगर अनिल भाई साहब भाभी की इस बात पर कम-से-कम कुछ नाराज़गी तो प्रकट करते। ठीक है, बीवी की बात सभी लोग मानते हैं, लेकिन...."

मैं उन दिनों मकान न मिलने के कारण अनिल के यहाँ ठहरा हुआ था। और कुछ ही दिनों में लछमन सिंह मेरे काफ़ी निकट आ गया था। स्वाभाविक बात थी, क्योंकि लछमन सिंह जैसा सच्चा और गर्म दिल नौकर मैं ने पहले कभी नहीं देखा था। इसी लिए जब अवसर मिलता, हम बैठ जाते। और लछमन सिंह मुझे अपनी, अनिल और शकुन्तला की छोटी-मोटी बातें सुनाता रहता। उन के पीछे अब भी वह अनिल को भाई साहब और शकुन्तला को भाभी कह कर बुलाता।

"और तो सब ठीक है, भाई साहब, परन्तु भाभी की एक बात मुझे बिलकुल पसन्द नहीं। हर रोज़ सुबह जब मैं सब्जी ले कर लौटता हूँ, तो यों पाई-पाई का हिसाब पूछती हैं, जैसे मैं ने बीच में से कुछ खा लिया होगा और जब मैं बुरा मानता हूँ तो नाराज़ हो जाती हैं। और अनिल भाई साहब से शिकायत करने लगती हैं कि लछमन सिंह बदतमीज़ी करता है। अब आप ही बताइए कि इतना वहम करने की क्या ज़रूरत है? कोई सौ-पचास की सब्जी नहीं होती। दस-बारह आने या एक रुपया। उस में मैं क्या ऊपर-नीचे कर लूँगा? भाई साहब, आप तो मुझे जानते नहीं, लेकिन सच कहता हूँ, बेईमानी का पैसा हराम है मुझ पर...."

कभी कहता, "अनिल भाई साहब को क्या होता जा रहा है। बात-बात पर बिगड़ने लगते हैं। कल आप घर नहीं थे। मैं बैठा रसोई में सब्जी बना रहा था। और जैसा कि मेरी आदत है, काम करते-करते यों ही कुछ गुनगुना रहा था। मन की मौज है, भाई साहब, जिधर आ जाय। इतने में अनिल भाई साहब आ गये। भाभी ने न जाने क्या

कहा। बस आते ही मुझ पर बरसने लगे, 'लछमन सिंह! यह घर हैं, कंजरखाना नहीं! समझे? शरीफों को तरह रहना होगा। समझे! अब आप ही बताइए, सब्जी बनाते हुए कभी कोई गुनगुनाने लगे, तो घर कंजरखाना बन जाता है! भाई साहब या भाभी क्या खुद कभी नहीं गुनगुनाते? अभी तो रात ही भाभी गुनगुना रही थीं। और कोई यह नहीं कह सकता कि भाभी मुझ से अच्छा गुनगुनाती हैं।"

मैं हँस पड़ा। लछमन सिंह कितना प्यारा आदमी है!

एक दिन वह अनिल के बेबी मीटू को उठा कर मेरे पास ले आया और कहने लगा, "देखिए, भाई साहब, मीटू के फराक का यह रंग क्या खराब है?....नहीं-नहीं, खराब है, तो बता दीजिए। चूँकि यह फ़राक मेरी खरीद है, इसलिए भाभी को पसन्द ही नहीं आता। जब कभी मीटू को यह फ़राक पहनाता हूँ, तो बड़बड़ाने लगती हैं। और चूँकि उन्हें पसन्द नहीं, अनिल भाई साहब भी इसे बुरा बताते हैं। वैसे मुझे यकीन है कि अनिल भाई साहब को यह रंग बहुत पसन्द है।"

लछमन सिंह किस तेज़ी से बात की तह तक पहुँच जाता है!

एक दिन मैं कमरे में बैठा अखबार पढ़ रहा था कि लछमन सिंह धम-धम ऊपर आया।

"ग़ज़ब हो गया, भाई साहब! ज़रा नीचे तो चलिय। अनिल भाई साहब और भाभी आपस में झगड़ रहे हैं और बेचारा मीटू रो-रो कर बेहाल हुआ जा रहा है। मैं ने रोका, तो भाभी बोलीं, 'तू चुप कर बे, लछू के बच्चे!' और भाई साहब बोले, 'अगर नज़दीक आया, तो पीट कर रख दूँगा।' मैं ने बेबी को उठाना चाहा, 'तो भाभी ने मेरा हाथ झटक दिया। कहने लगीं, 'एक तो इस मरदूद ने नाक में दम कर दिया है!' और भाई साहब बोले, 'लछू के बच्चे! तू नौकर है या हमारा बाप, हर बात में दखल देता है'!"

जब मैं ने उसे समझने की कोशिश की कि, "देखो, लछमन सिंह, पति-पत्नी के झगड़े में तुम्हें नहीं पड़ना चाहिए," तो लछमन सिंह झट बोल उठा :

"क्यों नहीं पड़ना चाहिए, भाई साहब ? जो घर में रहता है, उसे घर की हर बात में दखल देना पड़ता है। और फिर मेरे तो उन से सम्बन्ध ही और क़िस्म के हैं...."

अब मैं लछमन सिंह को कैसे समझाता कि उस के और उन के सम्बन्ध और क़िस्म के नहीं। मैं ने बात टालने की गरज़ से कह दिया, "तुम्हें क्या, लछमन सिंह ? वे जो भी जी में आये, करें। तुम अपने काम से काम रखो और मौज उड़ाओ....तुम्हें क्या।"

बोला, "वाह, भाई साहब ! आप भी वही बात कहने लगे, जो शकुन्तला बीबी जी कहती हैं। फिर तो मेरी हैसियत नौकरों की-सी हो गयी ना ! लछमन सिंह जहाँ रहेगा, अपना घर समझ कर रहेगा, नहीं तो नहीं रहेगा !"

उस के बाद न जाने किस तरह मैं ने बात का रुख बदला। और अपने बारे में लछमन सिंह के दिल में पैदा हो रही गलतफ़हमी को किसी कदर दूर किया।

हम बातें कर रहे थे कि नीचे से शकुन्तला की आवाज़ आयी, "ओ लछमन सिंह ! कहाँ बैठ गया जा के ? कुछ काम भी करेगा ?"

और लछमन सिंह एक मुस्कराहट के ज़रिये मेरा ध्यान इस आवाज़ में लिपटी हुई उपेक्षा की ओर दिला कर चला गया।

उधर अनिल और शकुन्तला को लछमन सिंह के विरुद्ध कुछ कम शिकायतें नहीं थीं, गो उन की नौइयत कछ और ही थी।

शकुन्तला को सन्देह रहता कि लछमन सिंह काफ़ी दूध स्वयं पी जाता है और बाकी में पानी मिला देता है, जिस के कारण मीटू का

स्वास्थ्य गिरता जा रहा है, अनिल को दूध का स्वाद बिगड़ा-बिगड़ा महसूस होता है। चूँकि मुझे सिर्फ़ चाय ही मिलती थी, इसलिए मैं कुछ कह नहीं सकता, सिवाय इस के कि मुझे शकुन्तला का यह शक न सिर्फ़ काफ़ी बेबुनियाद लगता, बल्कि किसी हद तक मुझे उस में कमीनापन की बू आती। कभी-कभी मैं सोचता कि अगर लछमन सिंह ने यह बात सुन ली तो बहुत बुरा होगा।

अगर कभी लछमन सिंह का कोई पुराना परिचित या दोस्त उस से मिलने आ जाता और वह कुछ देर के लिए नीचे जाकर सड़क पर खड़ा हो कर उस से बातें करने लगता, तो शकुन्तला बहुत तिलमिलाती। और कभी-कभी तो उस से कह भी देती कि, 'लछमन सिंह, जब काम का समय होता है; तुम दोस्तों को बुला लेते हो! यह बात अच्छी नहीं।' लछमन सिंह उस के सामने धीरे से मुस्करा देता, जैसे कह रहा हो, 'क्या घटिया बात कर रही हो, भाभी!' इस सिलसिले में एक रोज़ लछमन सिंह बहुत नाराज़ भी हो गया था।

शकुन्तला लछमन सिंह की इस ज़िद्द और नाराज़गी की भी बहुत शिकायत करती!

"नौकर न हुआ, अफ़सर हो गया हमारा! बात-बात पर नाराज़। सौ बार कहा है उन से, निकल परे करो इसे हम बिना नौकर के ही अच्छे। जितना हम सब मिला कर नहीं खाते, उतना यह अकेला खा जाता है। और उस पर नाराज़गी की यह धौंस अलग।"

अच्छा हुआ कि लछमन सिंह ने शकुन्तला की यह बात भी नहीं सुनी।

"फज़ूल बहस करने की पता नहीं इसे क्या बुरी आदत है। इसे कहो कि, 'लछमन सिंह, आज आलू-मटर बनेंगे,' तो झट जवाब देगा, 'अभी कल ही तो बने हैं।' इसे कहो कि, 'लछमन सिंह, आज

रात को दूध कम लाना,' तो पूछने लगेगा, 'क्या कहीं निमन्त्रण है ?' रात को सिनेमा से लौटें तो इस की फरमाइश होगी कि हम इसे फ़िल्म की कहानी सुनायें। जवाब न दो, तो अपने-आप बोलता रहेगा और कभी बुलाते रहो, तो जान-बूझ कर कान बन्द कर लेगा। कहीं किसी दोस्त या रिश्तेदार के यहाँ शादी-व्याह हो, तो इस की इच्छा होगी कि हम इसे भी साथ ले चलें और कभी इसे साथ ले भी जायँ, तो वहाँ जा कर इस तरह बैठ जायगा, जैसे सब से बड़ा मेहमान यही हो। शुरू-शुरू में तो इस ने हमें बहुत ही तंग किया। खाने के समय अपना खाना भी साथ ही डाल लेता। कभी-कभी तो मेज़ पर भी साथ ही बैठ जाता। वह तो मुझे साफ कहना पड़ा। खाने पर सब्ज़ी आदि कुछ कम हो जाय और इसे कहो, 'लछमन सिंह, थोड़ी सब्ज़ी और देना,' तो जवाब मिलता है, 'बाकी जो पड़ा है, वह तो मुश्किल से मेरा हिस्सा है ! अच्छा ले लो, मैं दही से खा लूँगा।' जैसे हमारे ऊपर एहसान कर रहा हो।

और जब शकुन्तला यह सब कुछ कह रही होती, तो अनिल यों तो ख़ामोश रहता, परन्तु मुझे उस की ख़ामोशी इन सब शिकायतों का समर्थन-सी महसूस होती। मैं भी करीब ख़ामोश ही रहता, गो कई बार जी चाहता कि उस से कह दूँ कि, यह सब बातें कितनी घटिया हैं और लछमन सिंह कितना ऊँचा आदमी है।

"जब कोई मेहमान आता है, तो, पता नहीं, इसे क्या हो जाता है। बढ़-चढ़ कर बातें करने लगता है। तुम एक कहो, यह दो कहेगा उन के घर की खैरियत पूछने लगेगा, जैसे यही उन का सगा हो। अब आप जानते हैं, घर में हर प्रकार के लोग आते हैं। किसी से कैसे सम्बन्ध होते हैं, किसी से कैसे। लेकिन इसे कौन समझाये। यह हर एक से हमारे कहे बगैर पूछने लगेगा, 'खाना तो यहीं खायेंगे न, अभी

मिनटों में तैयार कर दूँगा। अच्छा, नहीं तो चाय तो एक कप ले ही लीजिए। चाय के साथ क्या बना लाऊँ, शर्म की क्या बात है, आप का अपना घर है।' कोई पूछे इस से कि 'तुम्हें क्या पड़ी है? तुम्हारे बाप का घर नहीं।'....कोई जाने लगेगा, तो यह उसे हाथ पकड़-पकड़ कर रोकेगा, अभी थोड़ी देर तो और बैठ जाइए! इतनी भी क्या जल्दी है? इतने दिनों के बाद तो आये।

अनिल की खास शिकायतों में से एक यह थी कि लछमन सिंह को जब पैसों की आवश्यकता पड़ती, तो बजाय माँगने के, सीधे उस के कोट की तरफ़ लपकता और यों जेब में हाथ डाल देता, जैसे उस का अपना कोट हो।

"अजी, इस को तो छोड़ो, बदतमीज़ इतना कि जब मैं ग़ुसलखाने में नहा रही होती हूँ, तो आ कर दरवाज़े के बाहर खड़ा हो जायगा। और वहीं से सवाल-जवाब करता रहेगा, 'यह कर दूँ, वह कर दूँ, तौलिया तो नहीं चाहिए?' बेबी को भी साथ ही क्यों नहीं नहला लिया? साबुन तो कल ख़त्म हो गया था। नहा किस से रही हैं? और साबुन ला दूँ दौड़ कर?....कितनी शर्म की बात है!"

"फिर इसे अपने बनाव-सिंगार का इतना ख़याल रहता है, जब देखो, शीशे के सामने खड़ा मिलेगा। शुरू-शुरू में तो कंघी-तेल भी हमारा ही इस्तेमाल करता था।"

"एक दिन तो हद्द ही कर दी इस ने। हम दोनों घर पर नहीं थे। मीटू को भी साथ ले गये थे। जब शाम को वापस लौटे, तो फ़्लैट को ताला लगा पाया। हम ने सोचा, यहीं कहीं होगा। आवाज़ दी, लेकिन कहीं पास होता, तो आता। पूरे डेढ़ घंटे बाद क्या देखते हैं कि साहब मटकते हुए चले आ रहे हैं और अनिल का गेबरडीन का सूट, जिसे यह स्वयं बहुत कम पहनते हैं, डाट रखा है! मैं तो देखते

ही जल कर रह गयी। बुरा तो अनिल ने भी माना, लेकिन उन दिनों यह हमारे यहाँ नया-नया आया था। और अनिल कहा करते थे लछमन सिंह हमारा नौकर नहीं, दोस्त है।"

"अरे यार, अगर शकुन्तला कन्ट्रोल न करती, तो हम मुसीबत में पड़ गये होते। उस घटना के बाद जब हम ने ट्रंकों और अलमारियों को ताले लगाने शुरू कर दिये, तो यह साहब भिनभिनाने लगे कि हमें उन पर विश्वास नहीं। अब तुम ही बताओ।"

लेकिन पहले इस के कि मैं कुछ बता पाता; शकुन्तला बोल उठी "और सच पूछो, भाई साहब, तो हमें इस पर विश्वास है ही नहीं। हम क्यों करें विश्वास ? आखिर है तो नौकर ही।"—उस के बाद शकुन्तला ने एक लम्बा-चौड़ा किस्सा सुनाया कि किस प्रकार उस के माता-पिता के यहाँ के एक बहुत मक्कार नौकर ने एक बार उस की माँ की एक अंगूठी उड़ा ली थी। और बहुत डराने-धमकाने पर भी उस ने जुर्म को नहीं माना था। बाद में वह अँगूठी माँ की छोटी अँगुली में पड़ी मिल गयी थी ज़रूर, उस कमबख्त ने चुपके से रात को माँ की अँगुली में डाल दी होगी। माँ को पता न लगा होगा।

यह सब बातें सुन चुकने के बाद जब एक रोज़ लछमन सिंह ने मेरे कमरे में आ कर मेरे कान में एक बात कही, तो मुझे सुन कर कोई आश्चर्य न हुआ।

मैं उन दिनों एक गम्भीर दिमाग़ी उलझन में गिरफ़्तार था। मुझे फ़ैसला करना था कि मैं अंजना से शादी के लिए अभी कह दूँ या कुछ दिन और इन्तज़ार करूँ, ताकि हमारे सम्बन्ध और घनिष्ठ हो जायँ। अक्सर मेरी शामें ऊपर वाले कमरे में निहायत बेकरारी के आलम में इधर-उधर बेवकूफ़ों की तरह टहलते गुज़रतीं। एक शाम को इसी छटपटाहट में दरवाज़ा बन्द किये कमरे की लम्बाई चौड़ा

नाप रहा था कि लछमन सिंह ने दरवाज़ा खोलने के लिए कहा।

"कहो, लछमन सिंह, क्या बात है ?"

"भाई साहब, बात बहुत बुरी है। सोच रहा हूँ, कहूँ या न कहूँ ?"

"कह दो, लछमन सिंह, इतनी बुरी भी क्या होगी ?"

"भाई साहब, बात दरअसल यह है कि अब आप को यहाँ से चले ही जाना चाहिए।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"बस, भाई साहब, और कुछ न पूछिए। मैं नहीं चाहता कि आप के और अनिल भाई साहब के सम्बन्ध में कोई अंतर आये। बस, अब आप कोई-न-कोई मकान ढूँढ़ ही निकालें।"

मेरे इसरार पर लछमन सिंह ने जो कुछ बताया, उस का सीधा नतीजा यह हुआ कि उसी रोज़ मैं ने अंजना से शादी के लिए कह दिया। अंजना मान गयी और कुछ ही दिन बाद हमारी शादी हो गयी और हमें एक मकान भी मिल गया।

मेरी शादी के कुछ ही दिन बाद लछमन सिंह ने अनिल की नौकरी छोड़ दी। और हमारे पास आ गया।

इस बात को अब छः महीने हो चुके हैं। लछमन सिंह हमारे यहाँ काम करता है। बहुत अच्छा काम करता है। हमें उस के खिलाफ़ कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। लेकिन अजीब बात है कि मेरी बीबी को करीब-करीब वही शिकायतें हैं, जो अनिल की बीबी की थीं। लछमन सिंह ने मुझे साहब और अंजना को बीबी जी कहना शुरू कर दिया है, गो हमारे पीछे वह अब भी मुझे भाई साहब और अंजना को भाभी कह कर बुलाता है। जब वह गुनगुनाता है, तो अंजना की भवें

तन जाती हैं। जब वह बढ़-चढ़ कर मेहमानों से बातें करता है, तो हम दोनों अन्दर-ही-अन्दर बुरा मानते रहते हैं। जब उस का कोई दोस्त उसे मिलने आता है, तो अंजना उस से नाराज़ होती है। और जब कुछ दिनों बाद वह हमारे बच्चे के लिए फ़राक ले आयेगा, तो मुझे यक़ीन है कि हमें उस का रंग पसन्द नहीं आयेगा। लेकिन मेरा अन्दाज़ा है कि लछमन सिंह इस से पहले ही हमारे यहाँ से चला जायगा, क्योंकि एक दिन मैं ने उसे अपने पड़ोस वाले मदरासी बाबू से खुसर-पुसर करते देखा था और सुना था। वह कुछ वैसी ही बातें थीं, जैसी वह मुझ से उस समय कर चुका था, जब वह अनिल के यहाँ रहता था।

एक क़ुतुब मीनार छोटा सा

हमारा प्यार शादी से पहले की और शादी के बाद की भी कई मंज़िलों से कई बार गुज़र चुका था। कभी-कभी यों महसूस होता, जैसे हम एक मुद्दत से किसी ड्रामे की रिहर्सल करते चले आ रहे हों। रिहर्सल का नयापन ख़त्म होने को था और कई बार ऐसी असीम ऊब का हमला होता कि ड्रामे की कल्पना मात्र बेहद बोझिल हो उठती। कहीं सारा उल्लास तैयारियों में ही तो नहीं सर्फ़ हो रहा? और फिर सहसा अपने उल्लास की सीम-ग्रस्त पूँजी के अहसास से दिल मसोस के रह जाना पड़ता।

उस रोज़ शायद इसी अहसास की लपेट में आ कर मैं ने किसी क़दर झुँझलाए हुए, पीछा छुड़ाने के से अन्दाज़ में प्रेम से कहा, "देखो प्रेमा, अब फ़ज़ूल वक़्त बरबाद करने में कोई तुक नहीं, अब शादी कर ही डालनी चाहिए।" कहते-कहते मेरा जिस्म ठंडे पसीने भीग गया था।

हम उस समय क़ुतुब की चोटी पर बैठे हुए थे। मेरा बाज़ू उस की कमर में था और उस का सर मेरे कन्धे पर। मेरी नज़रें सामने के

शून्य पर जमी हुई थीं और उस की नज़रें पलकों में ढँपी हुई थीं। मुझे उस के सर का बोझ नागवार तो नहीं, लेकिन वैसे महसूस ज़रूर हो रहा था, यानी मैं उस की तुलना उस समय किसी भी फूल से हरगिज़ नहीं कर सकता था। और मेरी ख़ामोशी में यह अहसास किसी कील की तरह धँसता चला जा रहा था। कोई ज़माना था कि मैं आवेश में उस के हर अंग की तुलना किसी फूल से किया करता था। उस की कमर से चिपका हुआ मेरा बाज़ू बेजान-सा पड़ा था। शायद उसे भी यह बेजान बोझ परेशान कर रहा हो। इस सोच का पीछा करती हुई मेरी नज़रें सामने के शून्य से हट कर उस की बन्द आँखों की ओर मुड़ गयीं। उस ने उन्हें बहुत ज़ोर से दबा रखा था, जिस से वे दो मसले हुए बासी फूलों में तब्दील हो गयी दिखाई दे रही थीं। और मुझे याद हो आया था कि शुरू-शुरू में कई बार मुझे उस की आँखें बहुत छोटी, बहुत सिकुड़ी हुई, जान पड़ती थीं, मानो वह किसी बहुत दूर की चीज़ को पकड़ पाने के लिए उन पर बहुत बड़ा दबाव डाल रही हो। बीच के दौर में उस ने वह दबाव बहुत कम कर दिया था, यह भी उस समय मुझे याद आया।

क़ुतुब की चोटी पर चढ़ बैठने का सुझाव प्रेमा ने ही दिया था कि उसे ऊँचाइयों से बहुत मोह हुआ करता था। मुझे उस समय वह कसरत एक दम बेमानी दिखाई दी थी उस ने शायद मेरी संकुचित रज़ामन्दी को लक्ष्य किया था, लेकिन बहस से दामन बचा जाने के ख़याल से टैक्सी में बैठते ही वह मेरे साथ सट आयी थी और मैं ने मानो फ़र्ज़ पूरा करने के लिए उस के एक कान पर एक बोसा चिपका दिया था और उस की पलकों पर मुझे वही बोझ उतरता हुआ अनुभव हुआ था, जिस से उस की आँखें दो मसले हुए बासी फूलों की सी दिखाई देने लगती हैं।

हम सुबह से इधर-उधर भटक रहे थे। उस ने कमरे में या किसी भी एक जगह ज़्यादा देर बैठे रहने से इन्कार कर दिया था। मैं पूछना चाहता था कि वह किस चीज़ से भाग रही है, क्यों इतनी बेचैन है, लेकिन मैं ने पूछा नहीं। उस के जिस्म से पसीने की बू आ रही थी। मुझे प्राय: उस के पसीने की गन्ध बहुत भाती थी। लेकिन उस रोज़ शायद मैं ख़ुद पसीने से पुता हुआ था और मेरे अपने पसीने की महक उसे भले ही अच्छी लगती हो, मुझे हमेशा बदहवास कर दिया करती है। ऐसी ही कोई वजह रही होगी कि मैं ने धीरे से उसे सीधा बैठने का संकेत भर दिया और वह तन कर बैठ गयी थी। मैं ने किसी कमी को पूरा करने की कोशिश में उस का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया था, लेकिन उस की नज़रों का सामना करने से कतराता रहा था। हमारे हाथों का आपसी स्पर्श बहुत गिलगिला-सा महसूस हुआ था। क़ुतुब जाने की बजाय ग़ुसलखाने में जाना उस समय हमारे लिए ज़्यादा उचित रहता। एक उड़ता हुआ ख़याल उस समय मुझे यह भी आया था कि गर्मीयों में हिन्दुस्तान भर के प्रेमियों को सरकारी ख़र्च से किसी पहाड़ पर भेज देना चाहिए। मुझे अपना यह विचार बहुत बेमौक़ा महसूस हुआ होगा कि उस के साथ ही मेरे होंठों पर एक ढीठ-सी मुस्कराहट किसी ज़िद्दी घरेलू मक्खी की तरह बैठ गयी थी। देर तक मैं उस मुस्कराहट से परेशान होता रहा था।

कनाट प्लेस से क़ुतुब काफ़ी दूर है। शुरू-शुरू की बात मैं सोच रहा था....। मेरा अपना जी यही चाहता था कि आबादी से बहुत दूर किसी अकेले मुकाम पर बैठ, प्यार का रिवायती माहौल रचा कर उस की ख़ुशबूदार गोद में अपना सर रख कर आसमान की ओर देखता रहूँ, बादलों के घेरे में डूबा रहूँ, रात की स्याही हो तो उस के चेहरे में मुझे चाँद दिखायी दे और दिन की रोशनी हो तो उस पर उस की

स्याह ज़ुल्फों का पर्दा डाल दूँ। या फिर उस का सर अपनी गोद में संभाल कर आसमान का अक्स उस की आंखों में देख पाने की कोशिश में सब कुछ भूल जाऊँ। शुरू-शुरू की बात और थी, मैं सोच रहा था और परेशान हो रहा था। क्यों और थी ? इस सवाल का कोई जवाब कहीं से उभरता दिखायी नहीं देता था।

शुरू-शुरू में शहर से दूर जाना वैसे भी ज़रूरी था। और इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए टैक्सी में मीलों तक सफ़र करना भी लाज़िमी था। हमारा प्यार अपने देश के रिवाज के मुताबिक़ एक पोशीदा बीमारी की हैसियत रखता था। वह मेरे घर आ नहीं सकती थी और मैं उस के घर जाने के ख़याल भर से काँप उठता था वैसे भी उस समय घर के नाम पर मेरे पास सिर्फ़ एक कमरा था, जिस के एक कोने में मैं नाश्ता आदि तैयार करता था, दूसरे में नहाने—मुँह धोने आदि का सामान पड़ा कमरे की बदसूरती को बढ़ाया करता; तीसरे में एक टेढ़ा-सा, पिचका हुआ बुक शेल्फ और चौथे में मेरे दो सूटकेस एक दूसरे के ऊपर पड़े रहते थे ? कमरे में केवल चार कोने थे, जिन्हें निकाल कर जगह इतनी कम रह जाती थी कि उस में सिर्फ़ मैं ही बैठ कर अपनी जायदाद और भविष्य का जायज़ा एक साथ ले सकता था या लेट कर छत की कड़ियाँ गिन सकता था। वैसे अगर उन दिनों मैं ने ज़िद से काम लिया होता, होता, तो शायद कभी चोरी-छिपे वह मेरे कमरे में आ जाने पर रज़ामन्द हो जाती, लेकिन मुझे यक़ीन है कि हमारा प्यार उस हादसे की नज़र हो कर रह जाता। अच्छा ही हुआ, मैं क़ुतुब की चोटी पर बैठा हुआ सोच रहा था कि मैं ने उस शुरू के दौर में ज़िद से काम नहीं लिया।

उस के घर में जगह तो शायद ज़रूरत से ज़्यादा थी, लेकिन साथ ही उस की माँ भी थी, जिस से मुझे उतना ही डर लगता था, जितना

कि किसी भी शरीफ़ आदमी को किसी अजनबी कुत्ते से या किसी भी हिन्दुस्तानी प्रेमी को अपनी प्रेमिका की माँ से लगना चाहिये। लैला को प्यार करने के लिए ज़रूरी नहीं कि उस के कुत्ते (या उस की माँ को भी ख़ाहमख़ाह मुँह लगाया जाय,) कहावत की बात दूसरी है।

और फिर उन दिनों प्रेमा बात-बात में अपनी ममी का ज़िक्र उसी बाकायदा सरसरीपन से ले आया करती थी, जैसे कुछ लोग अपनी गाड़ी, रिफ्रजरेटर या किसी दिलचस्प और क़ीमती क़िस्म की बीमारी का ले आया करते हैं। दरअसल मैं उन दिनों उस की 'ममी-रट' से इस क़दर तंग आ गया था कि कई बार जी चाहता कि कभी तो वह अपने डैडी का ज़िक्र भी कर दिया करे। फिर एक रोज़ मैं ने उस से कह भी दिया। मैं ने कहा, "प्रेमा, तुम्हें अपनी ममी बहुत अच्छी लगती है क्या ?" मैं कहना तो चाहता था : 'प्रेमा, तुम अपनी ममी को गोली नहीं मार सकती क्या ?' मेरा मतलब मुहावरे की 'गोली से होता, लेकिन मेरा अन्दाज़ा था कि वह मेरी बात को पूरी तरह समझेगी नहीं। मेरा वाक्य सुन कर उस ने मेरी ओर यों देखा था,जैसे कह रही हो, ममी तो चीज़ ही ऐसी है; कौन है जिसे वह अच्छी नहीं लगेगी ? फिर भी मैं समझता हूँ कि मेरे इस इशारे का ही असर रहा होगा कि उस दिन के बाद प्रेमा की ज़बान ममी के नाम पर कुछ हिचकिचाने लगी और धीरे-धीरे ममी का दख़ल हमारी बातचीत में बहुत कम होता गया। इसी बात के आधार पर मैं ने सोचा था कि प्रेमा को सीधे रास्ते पर लाने या अपनी बात समझाने के लिए इशारे से ही काम लिया जा सकेगा। मुझे यह सोच कर बहुत खुशी हुई थी।

हमारी मुलाक़ात कॉलेज में हुई थी। कॉलेज प्राइवेट था और उस में घर की लाज पर मर-मिटनेवाली सुघड़-सयानी मिडल क्लास

लड़कियों की संख्या बहुत रहती थी। एक चैलेंज सा बना रहता था। कॉलेज के प्रिंसिपल एक मनचले मद्रासी नौजवान थे, जिन की लोकप्रियता को लेकर बात चलती तो यही कहते बनता कि लड़कियाँ—चाहे वे मिडल क्लास की ही क्यों न हो—शक़्ल पर नहीं क़ाबिलियत पर जान देती हैं; चुनांचे उस कॉलेज के प्रोफ़ेसर हमेशा ढीले-ढाले मैले कपड़ों में लिपटे से रहते, दाढ़ियाँ हमेशा बढ़ी रहतीं और बाल उलझे हुए रहते। अपने उस मद्रासी प्रिंसिपल की सफलताओं को देखते हुए क़ाबिल होने के अलावा थोड़ा-बहुत आर्टिस्टिक होना भी सभी लोग ज़रूरी समझते। मैं ने भी दूसरे लोगों की देखा-देखी अपनी सूरत काफ़ी हद तक बिगाड़ रखी थी। प्रेमा को अपनी ओर आकर्षित होता देख मैं ने अपने बालों को और ज़्यादा उलझा लिया था। प्रेमा के अपने बाल हमेशा बहुत बने-संवरे रहते और उस का शुमार उस कॉलेज की शाहज़ादियों में हुआ करता था। मैं अपनी इस ख़ुशक़िस्मती पर बहुत ख़ुश था।

लेकिन उन्हीं दिनों न जाने किस वारदात को ले कर कॉलेज की फ़िज़ा बहुत नाज़ुक हो गयी थी। कॉलेज के लड़कों ने प्रोफ़ेसरों की ओर शक और दुश्मनी की नज़रों से देखना शुरू कर दिया था और साथ ही हमारी नकल में उन लड़कों ने भी अपना हुलिया बदलना या बिगाड़ना शुरू कर दिया था। कॉलेज करोलबाग के एक भरे-पुरे, खाते-पीते, शोर मचाते इलाके में था। उस मद्रासी प्रिंसिपल ने एक दिन हम सब को बुला कर कहा, "अगर इसी तरह चलता रहा, तो प्रोफ़ेसर और लड़के में तमीज़ करना मुश्किल हो जायगा। वैसे भी मुझे डर है कि कॉलेज कहीं बदनाम न हो जाय, इसलिए मेरा सुझाव है कि हम सब आज ही अपनी-अपनी दाढ़ियाँ साफ़ करवा दें और कल से बालों में कंघी कर के आयें। हमारे कपड़े भी साफ़ और चुस्त

होने चाहिये । लड़कों पर हमारी हरकतों और वेश-भूषा का बहुत उल्टा असर पड़ रहा है ।"

मुझे अपनी दाढ़ी साफ़ करवाने के ख़याल से बहुत कोफ़्त हुई कि प्रेमा ने चन्द ही रोज़ पहले मेरी दाढ़ी के बारे में एक बहुत प्यारा मज़ाक़ किया था । उस ने कहा था : 'इस दाढ़ी में आप जंगली नज़र आते हैं—बिल्कुल नोबल सैवेज ।' लेकिन प्रिंसिपल साहब की बात ठीक थी; कॉलेज के आसपास वाले लोगों के तेवर वाकई बदल रहे थे और होशियारी और एहतियात की बहुत ज़रूरत थी । सो मैं ने वही किया जो उन्हों ने कहा । प्रेमा ने मेरी नयी शक्ल को देखा, तो इतनी हँसी कि तबीयत खुश हो गयी और इसी खुशी में मैं ने बड़ों के से अन्दाज़ में उस के गाल पर एक मीठी-सी चपत दे दी और उस का चेहरा डूबते सूरज का सा हो गया । हमारे प्यार की ठोस शुरूआत उसी उसी दिन से हुई ।

फिर भी उन दिनों मिलने की सिर्फ़ एक ही सूरत थी और वह यह कि प्रेमा मुझे कनाट प्लेस में जन्तर-मन्तर के पास या इम्पीरियल होटल के पास दिखायी दे जाए और फिर हम चारों ओर एक सहमी हुई निगाह डाल कर किसी टैक्सी में जा बैठें । उन दिनों मुझे हमेशा यही महसूस होता कि मैं किसी शरीफ़ज़ादी को भगा लिये जा रहा हूँ । और इस अहसास की लहर मेरे खून में एक ख़ास क़िस्म का उबाल पैदा कर देती और टैक्सी में बैठते ही कुछ देर के लिए मेरे होंठ खुश्क हो जाते, सांस फूल जाती और आँखें मुँद जातीं । चोरी और प्रेम में मुझे बाद में पता चला, बहुत गहरा सम्बन्ध है ।

काफ़ी दिनों तक तो हम पास-पास भी नहीं बैठते थे कि ड्राइवर से बहुत डर लगता था । बात भी कुछ नहीं हो पाती थी कि ड्राइवर सब सुन सकता था । मेरा ध्यान वैसे भी बँटा रहता । ख़तरा रहता,

कहीं हमें एक दूसरे में मस्त समझ कर ड्राइवर यों ही सैर न कराता फिरे और किराया मेरे तौफ़ीक से ऊपर न चढ़ जाय। इतनी बेतकल्लुफ़ी अभी आपस में नहीं हुई थी कि मुझे प्रेमा के तौफ़ीक का भी कुछ अन्दाज़ा हो।

उन दिनों का ख़र्च वैसे ज़्यादा खलता नहीं था। बरसों से सुनता चला आ रहा था कि प्यार में दूसरी कुरबानियों के अलावा पैसे और वक़्त की कुरबानी भी देनी पड़ती है। दुनिया भर में यही दस्तूर है, यार लोग समझाया करते। कहीं यह कुरबानी होटल, सिनेमा और थिएटर के रास्ते दी जाती है और कहीं खँडहरों और वीरानों में भटक-भटक कर। एक तिफ़ल-तसल्ली उन दिनों यह भी रहती कि इसी बहाने दिल्ली की सारी ऐतिहासिक इमारतें देखने का अवसर मिल रहा है। मैं इतिहास पढ़ाता था और अगर सच बोलने की हिम्मत करूँ तो उस से पहले क़ुतुब के अलावा मैं ने कोई स्थान देखा ही नहीं था।

वैसे क़ुतुब का हमारे प्यार में एक विशेष स्थान है और मेरा ख़याल है, उस रोज़ प्रेमा ने अचानक जो क़ुतुब चलने को आग्रह सा किया, वह भी उसी नाज़ुक से सम्बन्ध से प्रेरित हो कर। क़ुतुब पर पहली बार हम ने एक-दूसरे को चूमा था। अब ऐसा लगता है, जैसे बरसों पुरानी बात हो। फिर भी जब वह क्षण याद आता है, तबीयत अब भी मचल उठती है और अपना सारा अनुभव उस एक क्षण में डूबने सा लगता है। अवसर वैसे उस से पहले भी मिले, लेकिन होंठ सूख के रह जाते रहे। क़ुतुब पर एक बार साहस कर के मैं उस की ओर झुक गया था और उस ने मेरे होंठ बड़े चाव से थाम लिये थे। और दरअसल हमारे प्यार का वास्तविक और अपेक्षाकृत ठोस आधार उस चुम्बन से ही बना था। उस के बाद शब्दों का स्थान क्रमशः स्पर्शों ने ले लिया था। कई दिनों तक बातचीत में मीठी-मीठी रुकावटें इतनी और इस रफ़्तार

से आने लगी थीं कि कोई बात आख़िर तक नहीं पहुँच पाती थी। उस से पहले के दौर में, जब सिर्फ़ बातें ही हुआ करती थीं, बातों का स्तर मेरी निगाह में काफी हलका हुआ करता था और मुझे उस के और अपने हर वाक्य से हिन्दुस्तानी फ़िल्मों या अंग्रेज़ी नावलों की बू आती रहती थी। मेरी इच्छा थी कि हमारा प्यार हर पिटी पटाई लीक से हट कर रहे। शायद हर प्रेमी इसी उमंग में तरह तरह की हरकतें करता है और फिर अपनी असफलता पर तिलमिलाता झुँझलाता रहता है। कुछ ख़ुशक़िस्मत लोग शायद इस झमेले में न भी पड़ते हों, कह नहीं सकता। लेकिन मैं कभी पूरी ईमानदारी से उस की आँखों में आँखें डाल कर, बिना शर्माये, यह नहीं कह पाता था: 'प्रेमा, तुम दुनिया की सब से ज़्यादा हसीन लड़की हो। तुम्हारा चेहरा चाँद से भी ज़्यादा कोमल है और तुम्हारी आवाज़ में जो रस है और तुम्हारी चाल में जो नशा है, वह न सुबह की की हवा में है और न फूलों की महक में।' ऐसे वाक्य ज़बान तक आते-आते बासी अनुभव होने लगते थे। ज़मीन हमेशा, पाँव तले बनी रहती थी और मुसकराहट में घुले हुए अविश्वास के विष को आकाश की नीलाहट या बादलों की शीतल सुमई स्याही या प्रेमा के सुडौल बदन की उत्तेजक हरारत ने कभी चेतना से ओझल नहीं होने दिया था।

कभी कभी ख़याल आता कि शायद मैं प्यार कर ही नहीं सकता। फिर इस ख़याल को दबा डालने की ख़ातिर प्यार की नयी नयी परिभाषाएँ तराशने लगता। सोचता, प्यार के उतने ही तौर तरीक़े हैं, जितने कि प्यार करने वालों के। लेकिन यह सुझाव प्राय आत्म-प्रवचना अनुभव होता। और इस सारे भीतरी द्वन्द्व का नतीजा यह रहता कि प्रेमा हरदम शिकायत करती रहती कि मैं उसे पूरी तरह से, दिलोजान से प्यार नहीं करता। कभी कभी उस की शिकायत में

प्रतिशोध की मात्रा इस क़दर बढ़ जाती कि मैं अपनी सब आशंकाओं को भूल कर उसे आश्वस्त करने के लिए उन सब घिसे पिटे वाक्यों का प्रयोग एक ही साँस में कर जाता जिन से बचने के लिए मैं प्यार की नयी नयी परिभाषायें तराशा करता था। ऐसे क्षण उस की विजय के क्षण हुआ करते थे। वह कुछ देर के लिए आश्वस्त हो जाती। लेकिन फिर शायद अपनी उस पराजय का बदला चुकाने की ख़्वाहिश से मैं अचानक अपने असली रंग में फूट पड़ता। तब मेरी ज़बान से ज़हर सा बरसने लगता। मैं उस की मिडल क्लासियत पर वार करता, उस के करोलबाग़ी कल्चर का मज़ाक़ उड़ाता, उस पर घरेलू और रिवायती होने का इलज़ाम लगाता और वह रोने लगती।

उसे रोता देख कर मेरी परेशानी और गुस्सा चरम सीमा को छू लेते। उसे चुप कराने के लिए पर्याप्त शब्द नहीं सूझते। और अभी तक उस के निकट जा कर उस के बालों को सहलाने या उस की आँखों को चूमने या उस के हाथों को दबाने या उसे भींच लेने के दौर का आरम्भ नहीं हुआ था कि यह ज़िक्र क़ुतुब के उस ऐतिहासिक चुम्बन से पहले का है। वह सामने बैठी रो रही होती और मैं उस के पास खड़ा अपनी ज़बान तक आ रहे सब रिवायती आश्वासनों को एक एक कर के रद्द कर रहा होता। कई बार और सब कुछ भूल कर उस की बिगड़ी हुई सूरत को नार्मल हालत पर लौटाने के लिए मैं अपनी सब मजबूरियों और आदतों को भुला कर एक निहायत ही गिलगिली आवाज़ में उस से अपनी ग़लती की माफ़ी माँग लेता।

उस समय मेरे व्यक्तित्व का एक टुकड़ा कट कर अलग हो जाता और मेरी उस उस गिड़गिड़ाहट का मज़ाक़ उड़ाने लगता। अपने व्यक्तित्व के इस विभाजन पर मुझे बहुत गुस्सा आता। अनुभव होता कि मेरी सारी ज़िन्दगी उस छोटी सी रूँ-रूँ करती हुई, बेवकूफ़ लड़की

की नाज़बरदारियों में तबाह हो जायगी और बाकी सब काम धरे-के-धरे रह जायँगे। ऐसे अवसरों पर प्यार से बढ़ कर फ़ज़ूल और विनाशकारी बीमारी मुझे और कोई नज़र न आती। यों लगता कि मुझे प्रेमा की सूरत तक पसन्द नहीं, सीरत की तो बात ही दूसरी है। और ऐन उसी समय मेरे अन्तःकरण में से मूलभूत प्रश्नों के काँटे से उभरने लगते—ज़िन्दगी का मक़सद क्या है? ज़िन्दगी के मक़सद और उस मुँह बिसूरती हुई नासमझ लड़की में क्या जोड़ है? क्या मेरी सारी उम्र....आदि-आदि। तब जी में आता कि दीवानावार चिल्ला उठूँ कि मुझे तुम से प्यार नहीं है; मैं बाज़ आया; तुम मेरी जान छोड़ो, प्रेमा! वह मेरी इन दुविधाओं की शायद कल्पना भी नहीं कर पाती होगी। उस की उम्र सिर्फ़ अठारह साल की थी। मुझे हर समय अपनी उम्र के फ़र्क का भी बहुत ध्यान रहता था।

मतलब यह कि वह ज़माना एक अज़ाब से कम नहीं था। और फिर क़ुतुब के उस आकस्मिक सामीप्य के बाद मानो वे सब उलझनें एकदम ग़ायब हो गयीं। जिस्म की हरारत में मानो मेरे सब अन्तर्द्वन्द्व पिघलते चले गये। उस का रोना-धोना बहुत कम हो गया और मेरी चीख़-चिल्लाहट जाती रही। दिमाग़ और दिल के बीच एक दीवार-सी जो बनी हुई थी, वह भरने लगी। सब से बड़ी बात तो यह थी कि शब्दों का प्रयोग बहुत कम हो गया। वक़्त काटने की समस्या जाती रही और वक़्त की बरबादी का ख़्याल भी दूर हो गया। मूलभूत प्रश्न न जाने कहाँ लोप हो गये? एक प्रकार की लापरवाही हमारे सम्बन्धों में धीरे-धीरे आने लगी। शारीरिक सामीप्य का अपना प्राकृतिक विकास होता है, हम उस विकास को रोकने में असमर्थ थे। मैं ने कमरा बदल लिया था मुझे एक बाक़ायदा क़िस्म की नौकरी भी मिल गयी थी। मेरा नया कमरा बहुत ख़ूबसूरत और बड़ा था।

प्रेमा अपने घर कोई न कोई बहाना बना कर हर रोज़ मुझ से मिलने आती थी। प्रेमा के इस आने-जाने का ही असर रहा होगा कि कमरे में अब एक प्रकार की महक बसी रहती थी। जाने से पहले वह हर चीज़ अपने ठिकाने पर लगा जाती, जिस से कमरा प्रायः हरदम नयी साबुन की टिकिया-सा दिखायी देता। अब हम बाहर घूमने-फिरने बहुत कम जाते। कई-कई दिन बीत जाते और हमारे बीच कोई तकरार न होती। शुरू-शुरू में अगर प्रेमा को कुछ देर हो जाती, तो मैं परेशान और बेसब्र हो उठता; उस से कई क़िस्म के सवाल पूछता; थोड़ी-सी रंजिश का बहाना भी करता। फिर कुछ दिनों बाद एक दौर ऐसा भी आया कि ख़्वाहिश होने लगती कि हमारी मुलाक़ातों में कभी तो एक-आध नाग़ा भी पड़ना चाहिये।

शायद अपनी इसी दबी-दबी ख़्वाहिश ने धीरे-धीरे एक आशंका का रूप धारण करना शुरू कर दिया और तब न जाने क्यों मैं फिर कुछ असन्तुष्ट-सा रहने लगा। ख़्वाहिश होने लगी कि अब यह दौर भी ख़त्म होना चाहिये। हरदम कुछ खटका-सा लगा रहता कि अगर ज़्यादा देर और इसी तरह चलता रहा, तो ठीक नहीं होगा। बेशक मैं प्रेमा के सामने अपने इन विचारों पर परदा डाले रहता, लेकिन उस ने कभी कुछ देखा न हो, ऐसी बात हो नहीं सकती। और बातों में न सही, ऐसी बातों में प्रेमा की नज़र काफ़ी तेज़ थी। कभी-कभी प्रेमा के साथ अपने सम्बन्धों के औचित्य पर कुछ संस्कारजन्य सन्देह भी मन में उठ खड़े होते और फिर अपनी तथाकथित आधुनिकता और चिन्तन-स्वातन्त्र्य के सतहीपन पर खीझ आती। जैसे कॉलेज के काम में एक प्रकार की एकरसता आ चुकी थी, वैसे ही प्रेमा के हर रोज़ के आने-जाने आदि से भी ऊब का आभास होने लगा था।

कभी कभी और प्रकार के किसी क़दर गम्भीर सवाल भी दोबारा

मन में सुलगने लगते—अपनी ज़िन्दगी की दिशाहीनता कोंचने लगती। हर चीज़ और हर बात से बेज़ारी-सी होने लगी थी। उन्हीं दिनों एक धारणा बनी थी कि किसी भी काम में दिलचस्पी और सन्तोष की एक परीक्षा यह है कि ज़िन्दगी भर उसी एक काम में अपना अत्यधिक समय बिताने या बिताने के ख़याल पर भी ऊब और बेज़ारी की प्रतिक्रिया ज़्यादा देर न रहे। और ज़िन्दगी भर इतिहास पढ़ाते रहने के खयाल भर से मन में एक हौल-सा उठ खड़ा होता। किसी भी दूसरी दिशा में भाग निकलने की ख़्वाहिश या जनून सवार हो जाता। प्रेमा के साथ ज़िन्दगी गुज़ार देने के विचार से भी अगर हौल नहीं, तो मस्ती का आलम उन दिनो मन पर नहीं छा पाता था।

एक बार रानीखेत में एक अंग्रेज वृद्धा ने सावेश मुझ से पूछा था; 'बता सकते हो कि प्रेम और सौन्दर्य हमेशा-हमेशा के लिए क्यों नहीं रहते?' और मैं उस के सवाल का जवाब देने की बजाय उस के चेहरे की बुझती हुई लौ में उस के अनुभव की लाश का मातम-सा करने लगा था और रानीखेत की पहाड़ियाँ किसी क़ैदखाने की ख़ामोश पहरेदार-सी अनुभव होने लगी थीं।

मैं ने कभी अपनी इस नयी अन्दरूनी हलचल को प्रेमा पर व्यक्त नहीं किया था। और उस ने कभी इस क़िस्म का बुनियादी सवाल मेरे सामने नहीं उठाया था। कभी-कभी यह सोच कर उस से ईर्ष्या भी होती और उस पर गुस्सा भी आता कि ऐसे सवाल उसे कभी बेचैन ही नहीं करते होंगे। वैसे मैं उस के बारे में, उस के मन में उठ रहे सवालों के बारे में सोचता बहुत कम था कि अपने आप से ही छुटकारा पाना बहुत मुश्किल रहता।

इन सभी उलझनों और आशंकाओं का ही एक अप्रत्यक्ष नतीजा रहा होगा कि उस रोज़ क़ुतुब की चोटी पर मैं ने किसी क़दर

झुँझलाये हुए, पीछा छुड़ाने के-से अन्दाज़ में प्रेमा से कहा था: "देखो प्रेमा, अब फ़ज़ूल वक़्त बरबाद करने में तुक नहीं, अब शादी कर ही डालनी चाहिए।" और कहते-कहते मेरा जिस्म ठंडे पसीने में भीग गया था।

मैं ने अपनी बात बिना सोचे-समझे कही थी। यह सोचने का समय अपने आप को नहीं दिया था कि प्रेमा की प्रतिक्रिया उस समय क्या होगी। लेकिन आशा शायद यही रही होगी कि सुन कर प्रेमा उछल-सी पड़ेगी और मुझे उसे थाम लेना पड़ेगा। ऐसा हुआ नहीं। वह चुपचाप मेरी ओर देखती रही, जैसे मुझे अपना वाक्य वापस ले लेने का अवसर दे रही हो या किसी खास ढंग से मेरा मुँह चिढ़ा रही हो। मुझे उस की यह ख़ामोश टकटकी बहुत नागवार लग रही थी। महसूस हुआ था, जैसे उस की आँखों की सिकुड़न में कोई छोटा सा तराज़ू रखा हो। कुछ देर बाद वह तराज़ू टूट सा गया दिखायी दिया और उस के होठों पर अविश्वास की स्याही घिर आयी। मुझे उस का यह खमोश और स्याह अविश्वास बहुत असह्य प्रतीत हुआ। अब भी जब उन काले क्षणों की याद आती है, तो बेचैन हो उठता हूँ। क्यों नहीं उस ने मुझ से झगड़ा किया? क्यों वह चुपचाप बैठी मेरी ओर उस तरह देखती रही? क्यों मैं ने उस समय उस से उन शब्दों में शादी कर डालने की बात कही?

फिर उस ने मानो एक बहुत ही लम्बे अरसे के बाद बहुत ही धीमी और बेज़ान आवाज़ में कहा, "अब अगर हम शादी कर भी लेंगे तो बात बनेगी नहीं, क्यों?" कहते कहते वह उठ खड़ी हुई। मैं उस की ओर देख रहा था और अनुभव कर रहा था, जैसे क़ुतुब की चोटी पर एक छोटा सा क़ुतुब मीनार और खड़ा हो रहा हो। फिर मेरे देखते-ही-देखते वह सीढ़ियों की तरफ मुड़ गयी और मैं ऊपर के शून्य में खो गया, जहाँ उस का उठाया हुआ वह बेबुनियाद सा सवाल मानो मेरे भविष्य पर कौंध रहा था।

एक था बिमल

बिमल काफ़ी पी रहा है और सिग्रेट। हर घूँट के बाद उस का चेहरा ज़ख्मी सा हो जाता है और सिग्रेट के कश मानो उस ज़ख्म पर नमक का हल्का सा छिड़काव कर रहे हों।

काफ़ी सूखे गले को तर करने के लिए आवश्यक है और काफ़ी के हर घूँट के बाद सिग्रेट के एक दो कश जैसे उस पहली क्रिया का एक अनिवार्य परिणाम-मात्र हो।

एक मूर्खता दूसरी मूर्खता को जन्म देती है। मूर्खता की सदा-बहार कोख। काफ़ी सिग्रेट, सिग्रेट काफ़ी। सुबह होती है शाम....उम्र यों ही तमाम....सुबह करना शाम का....ए विषस सर्कल! एक टब की कल्पना करो, फिर उसी टब में एक सूराख़ की। फिर बताओ कि उस टब को भरने में कितना समय लगेगा। समय जो किसी का मोहताज नहीं। ज़माना नाम है जिस का। बलवान् समय। क्यों जी 'पहलवान समय' पर आप को क्या एतराज़ है। अहिंदी शब्दावली। यही तो फ़र्क़ है हदी और उर्दू में। और मुल्क की आज़ादी के बाद तो यह फ़र्क़ एक घाव की सूरत पकड़ गया है। इस घाव को भरो! लाक्षणिक दृष्टि से

देखा जाय तो....

बिमल की भीतरी रिक्तता में से भोंड़े लक्षणों के फूल खिल उठे। और बिमल ने सावेश सिग्रेट अपने होंठों से छीन लिया। फिर एक कड़ी निगाह उस पर डाली और उसे उस निगाह समेत ऐशट्रे में ठूँस दिया। और फिर प्याले में बची काफ़ी को भी ऐशट्रे में डाल दिया। सिग्रेट के टुकड़े काफ़ी में तैरने लगे। देहाती तालाब में जोकें कुलबुला रही हैं।

बिमल की भीतरी रिक्तता में से विकृत प्रतिबिम्बों का एक फ़व्वारा-सा फूट निकलता है।

लाशें कराह रही हैं। गिद्ध मँडरा रहे हैं। गधे हिन-हिना रहे हैं। यह कौन आज आया। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। हड्डियाँ चुरमुरा रही हैं। छातियाँ हुमहुमा रही हैं और शहनाइयाँ ऊधम मचा रही हैं। भीख माँगने वाले क़तार बाँधे खड़े पुलिस की लारी की राह देख रहे हैं और एक गोरा विदेशी घुटनों पर झुका कैमरा आँख से लगाये उन्हें न मुस्कराने का आदेश दे रहा है। इतने में एक कोरस की ध्वनि उठती है—इस देश में गंगा बहती है। बाढ़ की रोक थाम के लिए मुर्दा पशुओं, टूटी-फूटी खोखों, कांसी के बरतनों, डाल्डे के डिब्बों मुँह फटे जूतों, रंग-बिरंगे चीथड़ों, हस्तलिखित रामायणों आदि का एक बाँध बाँधा जा रहा है। चंद रोज़ और मेरी जान चंद ही रोज़। उस के बाद न जाने क्या होगा....

बिमल एक तिरस्कार-युक्त मुस्कराहट से इस फ़व्वारे का मुँह बन्द कर देता है। फिर उस मुस्कराहट को बुझा कर इधर-उधर निगाह दौड़ाता है। ऐशट्रे में तैर रहे सिग्रेट के टुकड़ों को देखता है। मुस्कराहट लौट आती है और तत्काल बिमल एक सिग्रेट और सुलगा लेता है और आस-पास देखने लगता है। किन्तु कोई उस की ओर

नहीं देख रहा। ये सब अपने ही शब्दजालों में लिपटे हुए हैं। अपनी मूर्खताओं पर कहकहों के फूल चढ़ा रहे हैं, अपनी रिक्तताओं से भाग रहे हैं। इन के आगे रोये अपने नयन खोये....

बिमल एक झटके से रुक गया। और उस झटके की रोशनी में उसे न अपने आप को एक चिर-परिचित खाई के किनारे पर झूलता हुआ पाया, अपना साया दूसरों पर डालते हुए देखा, आत्म विस्मरण की ज़रूरत और मजबूरी को दूसरों के निरीक्षण की आड़ लेते हुए देखा।

लानत है। कभी किसी बात पर। लानत है। सब मनोवृत्तियाँ एकाग्र करो। लानत है। नहीं। नहीं। नहीं।

बिमल ने आँखें बन्द कर लीं।

बिमल क्या कर रहे हो।

अपने दर्द का रस चूस रहा हूँ।

अँगूठा चूसो!

शर्म आती है।

बिमल तुम्हारी मुस्कराहट देख कर मुझे बल खाते साँप याद आने लगते हैं।

ओ गाड।

लानत है।

पागलपन पर लानतों के सींग उग आये हैं।

क्या फ़िक्रा है। शाबाश।

बिमल आँखें खोल दो।

खुलती नहीं।

बिमल अकेलेपन की परिभाषा बता सकते हो।

मैं इस समय समाधि लगाने जा रहा हूँ।

शाबाश।

ओ गाड।

बैरा मेज़ साफ कर रहा था, बोला—साइब, क्या फ़रमाया। बिमल उसकी ओर ऐसे देखता है जैसे एक गर्म एकाग्रता का आर्डर दे रहा हो।

उस के होंठों पर एक क्षीण-सी मुस्कराहट आ बैठी। सूखा पेड़, नीली चिड़िया। बिमल उस चिड़िया पर टिकटिकी बाँध लेता है। चिड़िया दम तोड़ देती है अब वह किसी प्रेत सरीखा शून्य में भटक रहा है। व्यतीत वर्तमान भविष्य ग्रस्त शून्य में। आस पास का कोलाहल उस का पीछा कर रहा है।

ईवनिंग न्यूज़ दो पैसे में।

बहुत ज़बरदस्त चीज़ है साहिब

क्या न कहने जनाब।

एक कोने में खड़ा हो कर मैं सारी की सारी नीट पी गया।

पंजाबियों का प्रोनंसिएशन....

क्या कहने।

बंगालियों का दिमाग़।

वाह वाह।

और मारवाड़ी औरतें।

भई खूब।

और जमादारिनों के नखरे।

तुम ने वह कहानी पढ़ी थी, काली भंगन।

वाह, वाह।

अपने इस देश में सब कुछ मिलता है।

मैं ने तो उसे साफ़-साफ़ कह दिया ।

सफ़ाई को रखो हमेशा अज़ीज़ ।

जब तक हमारे मुल्क के नौजवान कनाट प्लेस में भटकने की आदत

या बीमारी से छुटकारा नहीं पा लेते....

ग़लत बात है ।

कनाट प्लेस में क्या बुराई है जो ।

आँखें गर्म करते हैं ।

आँखों आँखों में एक सवाल आया ।

क्या ज़ालिम मिसरा है ।

ज़ुल्म की छाओं में दम लेने पे मजबूर हैं हम ।

भई तुम्हारा कोई जवाब नहीं ।

पाँच गर्म काफी और लाओ ।

कितनी अछूती तस्वीर थी ।

कितना अनुपम चित्र है ।

ओ गाड ।

मुसीबत के समय इन्सान हमेशा भगवान् का सहारा लेता है ।

और रोब गांठने के लिए हिन्दुस्तानी इन्सान हमेशा उस भगवान् को गाड कह कर पुकारता है ।

ईश्वर अल्ला तेरे नाम ।

बड़ी पैनी दृष्टि थी साहिब ।

ओ गाड ।

बिमल को लगता है कि अब शून्य में भटकने के बजाय वह किसी, मल्बे के नीचे दबता चला जा रहा हो । मल्बा उठाओ । फ़्लाइंग स्कुआड को सूचित कर दो । बिमल दाँत कस लेता है । कमर कस ली

होती तो कोई बात भी थी फिकरे कसो। अनुभव सागर के किनारे खड़े हो कर (या बैठ कर) अपना मज़ाक़ उड़ाओ। रेत के घर उसारो और फिर खीझ कर उन्हें गिरा दो। यही तुम्हारा धर्म है। मल्बे के नीचे दबे पड़े कसमसाते रहो। यही तुम्हारा कर्म है। रैस्तोरां में बैठ कर समाधि लगाओ। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।

समाधिस्थ बिमल।

आज वातावरण की विजय न होने पाये। उठो नहीं। जाओगे कहाँ। बैठो। चुप चाप। दोस्तों की प्रतीक्षा करो और फिर घंटों उन के संग बैठ कर बकवास करो। दोस्ती बकवास कर सकने के अवसरों का सामूहिक नाम है। दोस्ती अकेला न बैठ सकने की बीमारी का एक सीधा सादा इलाज है। किन्तु आज तो किसी का भी इन्तज़ार नहीं। खैर। समाधि लगाओ।

समाधिस्थ बिमल।

विशाल बंजर धारती। स्मृतियों के ववंडर उड़ रहे हैं। मधु-मक्खियों का छत्ता। तुम निकम्मे हो। यह आवाज़ किस की थी! यह आरोप किस का था? तम्बाकू की ज़र्दी में रची हुई मीलों लम्बी मूँछें जिन से खून के क़तरे टपक रहे हैं और दो दमकती हुई बड़ी-बड़ी आँखें जो उस के पिता की हैं जिन से खून फूट रहा है और उन मीलों लम्बी मूँछों की ज़र्दी में जज़्ब होता जा रहा है। बंजर धरती में भी मानो खून के बीज बोये जा रहे हैं।

मीलों की लम्बाई और मूँछों की ज़र्दी बढ़ती चली जा रही है और घर के अँधेरे को खून की रोशनी डस रही है और अँधेरे का पेट लाशें उगल रहा है—लाशें अतृप्त आकांक्षाओं और अधूरी प्रेरणाओं का एक गलता हुआ बदबूदार अम्बार। और बदबू के भबके दुनिया भर

के गिद्धों को बुला लाने के लिए काफ़ी हैं। जशन मनाओ।

पुरखोंकी दी हुई निधि, विरसे का ख़ज़ाना। युगों की देन, सदियों की सँजोई हुई सनातन पूँजी। और इन सब लाशों के अम्बार की रक्षक वह मीलों लम्बी मूँछें, जिन की ज़र्दी ख़ूनी होती चली जा रही है।

खान्दानी मूँछें—घर की लाज। भविष्य-और भूत-ग्रस्त दृष्टियों के काँटें, उस गले सड़े अम्बार की शोभा मल्बे की रक्षक वह मीलों लम्बी मूँछें खून के आँसू रो रही हैं, कराह रही हैं, तुम निकम्मे हो, तुम से कुछ नहीं होगा, तुम कुछ नहीं बनोगे, तुम में से कुछ भी नहीं उपजेगा। मूँछें भी नहीं, तुम निकम्मे हो। तुम ख़ान्दान के माथे पर एक रिसता हुआ कलंक हो और ख़ामोशी के भँवर में अवहेलना डूबती चली जा रही है।

उन मीलों लम्बी मूँछों के घने साये में एक गुर्राता हुआ घाव। और वह दमकती हुई बड़ी-बड़ी आँखें सिमट कर चलते हुए ख़ून का एक बिन्दु। और फिर एक चीख़ जो उसकी माँ की है—विरोध-शून्य, असंतोष-शून्य, मौन-ग्रस्त, स्वीकार-ग्रस्त धैर्य-ग्रस्त, यातना-युक्त। उन मीलों लम्बी मूँछों में किये हुए उस गुर्राते घाव और उस चीख़ में एक विकराल युद्ध और वह चीख़ एक नन्हीं सी चीख़ को जन्म दे कर परास्त हो जाती है।

अब वह नन्हीं अनाथ चीख़ उन मूँछों से खेलती है, मानो उस विकृत, घाव-ग्रस्त आकृति को सँवारने की चेष्टा कर रही हो। मूँछें काँटों की सी। घाव बंद नहीं होता। विकृति उन मूँछों में गड़ा हुआ एक नुकीला पत्थर है।

मूँछों की छत्रछाया में परवान चढ़ती हुई वह अनाथ चीख़ और माँ की याद एक क्रमशः फीका पड़ता हुआ चाँद और उस विकराल युद्ध की याद एक खौलता हुआ अनुभव और अपने लड़कपन की याद

एक यन्त्रणा की लहर !

ठोस कुँठाओं, बर्फ़ीले संशयों, निरन्तर चुभते हुए पश्चात्तापों की कुत्सित, बौनी, कँटीली झाड़ियाँ, जिन की जड़ें अतीत वर्तमान और भविष्य को एक साथ अपनी सूखी पकड़ में बाँधे हुए हैं, एक दूसरे से उलझी हुई, अकड़ी हुई, जैसे सूखी हुई बूढ़ी अँगुलियाँ हों।

और अब उस की मसें भीग रही हैं। और उन में निहित पैतृक मूँछों के लंबे मील और उन भावी मीलों का केन्द्र एक गुर्राता हुआ घाव जो प्रतिदिन बढ़ता चला जायगा और एक दिन उस में और उस बड़े पैतृक घाव में कोई अन्तर नहीं रह जायगा और उन लाशों के अम्बार की रक्षा का भार।

किन्तु नहीं। विरोध की चिंगारियाँ सुरसुरा रही हैं। नहीं, नहीं, नही, नहीं। और वह मीलों लम्बी मूँछें तिलमिला उठती हैं, नृत्य करने लगती हैं और सहसा तीसरा नेत्र खुल जाता है और एक विप्लव सा मच जाता है। लाशों का वह अम्बार कुछ एक जवान और ताज़ी लाशों से सुशोभित हो उठता है। गुर्राहट पिघल कर एक निर्बल, घायल पुकार में बदल जाती है, तीसरा नेत्र बन्द हो जाता है और मूँछों की लम्बाई सिमट जाती है।

शेर प्रायश्चित कर रहा है, प्रार्थनाएँ बुड़बुड़ा रहा है, किन्तु साथ ही साथ छिपी निगाहों से लाशों के अम्बार की ओर देखता चला जा रहा है। शायद कोई लाश पुनर्जीवित हो उठे। आहों के बादल घने होते जा रहे हैं। क्रोध का स्थान एक मूक याचना ने ले लिया है। बादलों के धुँएँ से घर में घुटन का सैलाब उमड़ आया है और वह क्रमशः फीका पड़ता हुआ चाँद—माँ की याद—एक स्याह धब्बे-सा बन गया है।

घायल शेर की मूक याचना उस के हृदय को खरोंच रही है।

अब चाँद बिलकुल मिट चुका है, जहाँ एक काला धब्बा था, वहाँ अब एक अथाह खाई है।

घर की घुटन और शेर की कराह और चाँद की खाई। घर को तजो। उस के हाथ में एक झंडा है जिस पर अंगारों से लिखा हुआ है—नहीं, नहीं, नहीं।

वह रुक कर चारों ओर देखता है। गलियों और सड़कों के जाल बिछे हुए हैं। आवाज़ें एक दूसरे से उलझ रही हैं। शब्द जैसे सनसनाती हुई गोलियाँ। मुस्कराहटें जैसे ज़हर की बारिश। हँसी जैसे बिजली की गरज। वचन जैसे रौंदे हुए फूल। मुहब्बत जैसे काँटों का ताज। लोग दीवानावार इधर-उधर भाग रहे हैं, एक दूसरे पर झपट रहे हैं, नोच रहे हैं। उस का सिर चकरा उठता है। लेकिन नहीं। घर के अँधेरे की ओर, नहीं। लाशों का अम्बार, नहीं, बाहर का अँधेरा, नहीं। घायल शेर, नहीं। चाँद की खाई, नहीं।

किन्तु लाशों का अम्बार उचक-उचक कर उस का हर क़दम रोक लेता है। और वह चीख़ वह फीका पड़ता हुआ चाँद—उसे प्रतिक्षण अकुलाता रहता है। आँखों में अतीत की सुइयाँ चुभ रही हैं और सामने वर्षों का काँटेदार ग़ालीचा बिछता चला जा रहा है।

वह बेतहाशा भाग खड़ा होता है। उस छोर की ओर, जिस के पार एक बेपनाह स्याही की कशिश है। रात की ख़ामोश स्याही स्मृतियों के जुगनू डस रहे हैं और उन टिमटिमाते हुए जुगनुओं में से एक फीके चाँद का उदय होता है। और वह एक लम्बी आह भर कर उस छोर से भी वापस लौट आता है, जिस के पार एक अभेद्य स्याही का समुद्र लहलहा रहा है। वह रास्ता, नहीं।

और फिर पोस्ट मार्टम। ज़िन्दगी आ मोह।! एक खोया हुआ क्षण! कमज़ोरी! और अब! आमरण दण्ड निश्चयों का। कुछ

करने का। हार मान गये ! उस घायल शेर में, मीलों लम्बी मूँछों से, लाशों के उस गले सढ़े अम्बार से किसी प्रकार का समझौता किये बगैर, सड़ाँध की पहुँच से दूर रह कर, कुछ करना होगा। कुछ करने का दण्ड। मिमियाना नहीं। पराजय स्वीकार किये बगैर किसी को दोष दिये बगैर सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य से।

किन्तु कुछ भी करने की इच्छा नहीं। वर्षों का ग़ालीचा काँटों से अकड़ा हुआ है। और उस स्याह रात में टिमटिमाते हुए जुगनुओं की लौ में काँपता हुआ वह भयावह छोर और उस से सम्बद्ध वह खोया हुआ क्षण। किन्तु लाशों के उस अम्बार को भस्म करने के लिए ही सही, कुछ तो करना ही होगा।

उस सड़ांध से पलायन असम्भव है। उस घायल शेर के सामने घुटने न टेकने के लिए ही सही, कुछ तो करना होगा—वह शेर जो अभी तक उन गली सड़ी लाशों के अम्बार के पास पड़ा ग़ुर्रा रहा है और जिस की आँखें दो खूनी सूराख हैं, जिन में उस की बूढ़ी और क्रुद्ध आत्मा एकटक उस दरवाज़े की ओर झाँक रही है, जिस में से भाग कर उस ने घर के अँधियारे से नजात पा लेने की ख्वाहिश से अपने आप को बाहर के उस उबलते हुए अँधियारे में ला फेंका था।

और अब अपने उस क़दम के परिणाम स्वरूप वह हमेशा के लिए इसी क़िस्म के चुनाव करने पर बाध्य है। वापस लौटना असम्भव है। दो अँधियारों में से उस ने एक, विस्तृत अँधियारे को चुना है। अब उस चुनाव की चुभन ही उस की पूँजी है। वह वापस नहीं लौटेगा। वापसी के विचार मात्र से ही बू आती है और बू से भागते रहना ही उस का भाग्य है। वह कुछ करेगा।

जल्द ही वह तन कर खड़ा हो जायगा और उस के पाँव जम जायेंगे और आँधी और अँधेरा उन्हें नहीं उखाड़ पायेंगे और पीछे लौट

जाने की दबी-घुटी ख्वाहिश भी मर जायगी और उस के और उस अम्बार के बीच का फ़ासला इतना ज़्यादा हो जायगा कि उस बदबू के भबके उस तक नहीं पहुँच पायेंगे और गिद्धों का काला साया हमेशा के लिए उस के सिर से उठ आयेगा। उस दम तोड़ते हुए शेर की चिन्ता मिट जायगी। उस क्रमशः फीके पड़ते हुए चाँद की याद की खरोंच खत्म हो जायगी। काले अतीत की बेड़ियाँ टूट जायेंगी। सामने पड़े काँटे फूलों में परिणित नहीं होंगे, वर्षों का ग़लीचा वैसे का वैसा ही अकड़ा रहेगा, फिर भी पिंजरे की लम्बाई चौड़ाई इस क़द्र बढ़ जायगी कि दम तोड़ने के लिए, कराहने के लिए, हार कर बैठ जाने के लिए और कभी-कभी चहचहाने के लिये एक काले कोने की बजाए....। वह कुछ करेगा।

जीवन। कर्त्तव्य। भाग्य। कोड़ों की बूफाड़। अनिश्चितता की खाइयों को फलाँगता हुआ, अंधी अकाँक्षाओं की धुंध को चीरता हुआ वह ठोस असफलताओं और काल्पनिक उप्लब्धियों के क्षणिक शिखिरों से टकराता हुआ बार-बार नीचे गिरता है, बार-बार ऊपर उठता है। दोस्ती और प्यार और स्वप्नों के साये में दम भर सुस्ता लेने के बाद....उस का साक्षात्कार भिन्न-भिन्न सम्भावनाओं से होता है, जो हिम्मत का खराज माँगती है—और हिम्मत उस ख़ान्दानी अम्बार की शोभा बन कर रह गयी है।

वह बेदिली से पाँव घसीटता हुआ फिर उस अम्बार की ओर लौटता है। मानो कोई लाश क़ब्र की ओर जा रही हो, कोई बदबू का भबका वापस अपने स्रोत की ओर लौट रहा हो, कोई भूली पथ-भ्रष्ट दृष्टि सुपथ पर सम्हल आई हो। और उस अम्बार का रक्षक वह दम तोड़ता हुआ शेर उस का स्वागत एक अजीब मुस्कराहट से करता है। उस की ग़ुर्राहट टूट जाती है और उस की याचनाओं के

बादल छँटने लगते हैं, कुछ न होने से कुछ भी होना बेहतर है। आधी हाथ में....सुबह का भूला....बुजुर्गों की नसीहत....और लाशों का अम्बार उस के देखते ही देखते दानाई और सुघड़ता का मक़बरा बन जाता है। गुम्बद की आवाज़ें उस के कानों में गूँज उठती हैं और वह आशीर्वाद ले कर नौकरी की तलाश में निकल पड़ता है। अपने उद्गारों की याद पाने के वहम से मुक्त हो कर रोज़ी कमाने की फ़िक्र में लग जाता है। शेर की मूँछ विजय के सरूर में नाच उठती है और उसे वह नृत्य अरुचिकर नहीं लगता।

फ़ाइलों को पहाड़ियाँ और लाल फ़ीते उसे लगता है जैसे वह ज़िन्दा किसी दीवार में चुना जा रहा हो। हर फ़ाइलनुमा ईंट लाल फ़ीते से बँधी हुई और उस में शब्दों के कीड़े सुरसुरा रहे हैं—आप को यह सूचना देते हुए खेद होता है और आप को वह सूचना देते हुये हर्ष होता है और आप को छुट्टी नामंजूर हो गई है और आप का केस विचाराधीन है और सर्वसम्मति से आप को चुन लिया गया है और आप जितनी देर चाहें आ कर बड़े अफ़सर के कमरे के सामने टूटी कुर्सी पर बैठ कर उन की प्रतीक्षा कर सकते हैं।

एक राक्षसाकार मशीन दिन रात उस के दिमाग़ में घरड़-घरड़ करती रहती है। मशीन काग़ज़ खाती है और शब्द उगलती है और दीवार धीरे-धीरे उस के मुँह की ओर बढ़ रही है। और वह अचानक जैसे किसी नींद से जाग उठता है, अचानक जैसे उस राक्षसाकार मशीन की शब्दावली उस की समझ में आ जाती है। और वह सकपका कर इधर-उधर देखने लगता है।

थके माँदे टूटे हुए लोग चींटियों की तरह सुबह शाम सड़कों पर रींग रहे हैं। मुस्कराहटों और नग़मों का क़त्लेआम मौलिकता को ग्रहन हड़प रहा है और फ़ाइलों के पहाड़ों पर लाल फ़ीतों के साँप

लहरा रहे हैं। चेहरों पर भविष्य के साये। अन्तरात्मा को नौकरी छूट जाने का भय चापे हुए है। हाथों की हरारत को पिटी-पिटाई दफ़्तरी भाषा ने चूस लिया है और कंधों पर छोटी-छोटी-चिन्ताओं के गट्ठर बँधे हुए हैं। दिमाग़ का दायरा संकीर्ण, कल्पना के इर्द-गिर्द स्वार्थ के कटघरे और दृष्टियाँ उन कटघरों में बंद सूखी टहनियों पर बैठी उदास चिड़ियाँ। अखबारों में लिपटी हुई रोटियाँ जिन की गिलगिली महक पर भूखे पेट और सब कुछ भूल कर एक भोंडा नाच-नाच रहे हैं और चेहरों पर खिले हुये कमीनगी के फूल जैसे चारों ओर चेचक की बीमारी फैली हुई हो। और क्षितिज पर वही फ़ाइलों की काग़ज़ी पहाड़ियाँ जिन पर वही लाल फ़ीतों की डोरियाँ, जैसे ब्रह्माण्ड भर के सूरज खून की लकीरें रो रहे हों।

और वह उन काग़ज़ी पहाड़ियों के इर्द-गिर्द लाल साँप लपेटता रहेगा। और उस की आँखे उन चेचक के दागों से ज़ख़मी होती रहेंगी। और उस को कल्पना कठघरे में बन्द चूँ चूँ करती रहेगी और वह अपने पेट को बासी टुकड़ों से भरता रहेगा। और पुरखों का छोड़ा हुआ वह लाशों का अम्बार और उस अम्बार का रक्षक वह दम तोड़ता हुआ शेर जिस के आशीर्वाद की याद उस की पीठ में खुबा हुआ एक खंजर....।

नहीं। ऐसा नहीं। यह रास्ता तो फिर वहीं जा कर ख़त्म होता है जहाँ सड़ाँध के फूल लहक रहे हैं और जिस के ऊपर दुनियाँ भर के गिद्धों का एक आसमान सा बना हुआ है। नहीं, यह नहीं, नहीं। उस का सारा ज़िस्म प्रतिशोध की अंगड़ाइयों से झनझना उठता है जैसे सूखी धरती की कोख में पड़ा कोई बीज अचानक जाग उठे। जैसे नींद में डूबी हुई पलकों पर दो दहकते हुए अंगारे रख दिये गये हों। जैसे कठघरे की सुलाखें उखाड़ी जा रही हो। जैसे अतीत की सारी

भ्रांतियां पावों तले रौंद रहे भुरभुरे पत्तों की भाँति चुरमुरा रही हों।

एक प्रश्न की कली चटखती है और उस समझौते के पहलू में काँटा बन कर खटकने लगती है। पैतृक बुद्धिमता का मक़बरा चेतावनियों और नसीहतों से झंकृत हो उठता है। अम्बार का रक्षक फिर से फुसफुसाने लगता है और उस की दृष्टि उस अम्बार में नेज़े की भाँति खुब जाती है! उस की आँखें याचनाओं के दो रिसते हुये नासूर बन जाती हैं और उस की कराहों का शोर जैसे कानो में कोई पिघला हुआ सीसा डाल रहा हो। परन्तु प्रश्नों की कलियाँ खिलती जा रही हैं।

और अब उस के सामने एक छोटा-सा बाग़ है। प्रश्नों का बाग़, उस का अपना, छोटा-सा। वह उस की देख-भाल करेगा। प्रश्न सींचेगा, उत्तरों की प्रतीक्षा करेगा, अतीत की ओर पीठ किये बग़ैर, भविष्य की ओर लपके बग़ैर, धैर्य से, संयम से किसी उचित शस्त्र की खोज करता हुआ, उस घायल शेर की अवहेलना की परवाह न करता हुआ, लाशों के अम्बार का बोझ झटकता हुआ।

शस्त्र की खोज। पुस्तकों के पहाड़। शब्दजाल और उन में लिपटे हुए अर्थ। शब्दों से संघर्ष करो। अर्थ खींचो। रस निचोड़ो। रुकावटों से टकराओ। दीवारों का सामना करो। खाइयों में कूदो। ढलवानों पर फिसलो। संशयों को उखाड़ो। शुरू से शुरू करो। अपने ज़ख़्मों को खुरचने या चाटने की बजाय उन का इलाज ढूँढ़ो पश्चात्ताप के काँटों की चुभन को पालते रहने की बजाय उसे समझने की कोशिश करो। दुःख को स्वीकार करो। इधर-उधर भटकने की बजाय एक सुनिश्चित रास्ता अपनाओ। क्षणिक सुखों की दलदल से बचो। मूल्यों की उपासना करो। मूल को समझो। शस्त्र की खोज।

और उसे शस्त्र मिल गया। सब दरवाज़े खटाक-खटाक खुल गये। सब ताले तड़ाक-तड़ाक टूट गये या करीब-करीब सब। सोचने का समय नहीं। दिमाग़ की धुँध फट गयी। सामने अर्थ का पहाड़ है। शस्त्र ही शास्त्र है। अब कोई चिन्ता नहीं कोई संशय नहीं। कोई उलझन नहीं। उस पहाड़ की चोटी से वह घायल शेर एक नाचीज़ चूहे का-सा दिखायी देता है। और उस पर कोई पत्थर तक लुढ़कने का उस के पास समय नहीं। उस की दुर्बल चीं-चीं से अर्थ का पहाड़ गिरने का नहीं। और वह लाशों का खान्दानी अम्बार उस ऊँचाई से मरे हुए अतीत के चेहरे पर किसी छोटी सी फुन्सी से बड़ा नज़र नहीं आता। वह उस बदबू की पहुँच से बहुत ऊँचा निकल गया है। और अब वह समय दूर नहीं जब वह मरा हुआ अतीत, उस का घृणित चेहरा, वह फुन्सी और उस चूहे की चीं-चीं सब मिट जायँगे। अर्थ का पहाड़ आसमानों को छू लेगा। आँखों का रुख ऊपर रहे। पीछे मुड़-मुड़ कर मत देखो। शस्त्र ज़िन्दाबाद—ज़ोर से बोलो! एक बार और—जय शस्त्र

अर्थ का पहाड़ और विश्वास की धूप और संघर्ष का संगीत और आत्मसमर्पण की मस्ती और एकाकीपन का अन्त और चारों ओर उजाला ही उजाला, अँधेरे से नजात। और हाथों में वह ठोस, जादूगर शस्त्र! और उस घायल शेर का देहान्त। एक प्रतीक, एक मंजिल। और स्मृतियों के ताबूत बन्द क़बरों का मुँह बन्द और विरसे के ज़ख़्मों के सूराख़ बन्द शस्त्र ज़िन्दाबाद। एक बार और—जय शस्त्र!

किन्तु।....यह शब्द पुराना है, बासी है, बेमानी है। इसे दबाओ। किन्तु।....शस्त्र पर अपनी पकड़ को मज़बूत रखो। नहीं तो थकान का यह आकस्मिक दौर। दौर तो आते जाते रहेंगे। उजाले में शिगाफ़ शिगाफ़ को मुक्के से भर दो। अर्थ का पहाड़ काँप रहा है। क़दम

जमाये रहो। शस्त्र पर यह ख़ूनी धब्बा कैसा। दृष्टि दोष। आँखें मीच लो। यह बदबू ? रुई ठोंस लो। एकान्त का एक क्षण। नहीं, एकान्त और एकाकीपन में सिर्फ़ एक बाल भर का अंतर है। पावों में लग्ज़श रुको नहीं। गले में कुछ अटक रहा है। निगल जाओ। आवाज़ लड़खड़ा रही है। ज़ोर से बोलो—जय शस्त्र ! किन्तु....

अर्थ का पहाड़ और चकाचौंध उजाले की तारीकी और संशय के जुगनू की टिमटिमाती हुई, धड़कती हुई रोशनी और उस चमत्कारिक शस्त्र पर फैलता हुआ वह ख़ूनी धब्बा। एक घिनावना ख़्वाब और उस जुगनू की धड़कन दिल के साथ-साथ बजती हुई। जुगनू को मसल दो, सब ठीक हो जायगा। किन्तु। जुगनू को कोई कैसे मसल सकता है। जुगनू और पहाड़ का आपसी महायुद्ध। और पहाड़ भुरभुराने लगता है। स्मृतियों के ताबूत कब्रें फाड़ कर निकल आते हैं। ताबूतों के ढकने हवा में उड़ रहे हैं और जहाँ कुछ क्षण पहले अर्थ का पहाड़ था वहाँ अब लाशों का अम्बार है। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं और क्षितिज विकृत मुस्कराहटों से स्याह हुआ जा रहा है और एक भयानक हँसी के चमकते हुए काँधे उस स्याही पर चमकते हुए तमाचे से मार रहे हैं। अर्थ का पहाड़ और एक अर्थहीन चूहा। रिक्तता की विजय और अर्थहीन शस्त्र....किन्तु....

किन्तु क्यों कैसे ? हुआ क्या ? कैसे ? क्यों ? किन्तु ? प्रश्नों की गूँज गुंबद में भटक रही है। खोखली, अनवरत, भूली-सी गूँज। रिक्तता का समुद्र ठाठें मार रहा है और एक फूली हुई लाश और एक पथराई हुई दृष्टि। क्यों कैसे क्यों ?

किन्तु इस सब का कुछ अर्थ तो........

एक बार का ज़िक्र है एक आदमी था और आदमी के पास एक

बाग था और वह जिस चीज़ को छू लेता जल कर राख हो जाती क्योंकि........नहीं।

एक बार का ज़िक्र है एक खान्दान था और खान्दान के पास एक खज़ाना था और खज़ाने से बू आती थी........नहीं !

एक बार का ज़िक्र है एक अनुभव था और अनुभव राख का एक ढेर था और राख वह सब चीज़ें थीं, जिन्हें उस आदमी ने छुआ था, आदमी जिस के पास एक बाग़ था, जिसे तज कर वह उस अर्थ के पहाड़ की तलाश में निकल गया था और उस अर्थ के पहाड़ की चोटी पर उसे एक खूनी धब्बा........नहीं

एक बार का ज़िक्र है एक लाशों का अम्बार था और एक घायल शेर उस की रखवाली करता था और एक फीका चाँद भी था, फिर एक रोज़ क्या हुआ कि वह चाँद मर गया और वह आदमी जिस के पास अपना एक बाग़ था........नहीं।

एक बार का ज़िक्र है कि एक पहाड़ था और उस पहाड़ की चोटी आसमान से बातें करती थी और वह आदमी जिस के पास एक शस्त्र था उस पहाड़ पर चढ़ना चाहता था, किन्तु वह रास्ता भूल गया कि वह शस्त्र झूठ बोलता था और........नहीं।

एक बार का ज़िक्र है कि एक घर था और उस घर के आँगन में लाशों का एक अम्बार था और एक शेर दिन रात उस अम्बार की निगहबानी करता था और फिर एक रोज़ हुआ क्या कि वह आदमी जिस के पास एक छोटा-सा बाग़ था और एक अजीब सा शस्त्र भी लेकिन........नहीं।

एक बार का ज़िक्र है कि एक छोटा-सा बच्चा था जो उन लम्बी मूँछों से खेला करता था, किन्तु एक दिन वह शेर जाग उठा, किन्तु यह शेर कहाँ से आ गया........नहीं।

एक बार का ज़िक्र है कि एक जुगनू था और जुगनू टिमटिमा रहा था कि एक पहाड़ ने उस से पूछा, तुम यह शस्त्र लोगे, और जुगनू ने कुछ जवाब नहीं दिया, बस चुपचाप टिमटिमाता रहा और वह पहाड़ अपने आप भुरभुराने लगा लेकिन........नहीं।

एक बार का ज़िक्र है कि एक बिमल था और........

हेलो बिमल।

हेलो बिमल।

हेलो बिमल।

बिमल के दोस्त बैठ गये। बिमल ने आँखें खोल दीं। दोस्तों ने काफ़ी मँगवाई और सिग्रेट। बिमल फटी-फटी निगाहों से उन की ओर देखता हुआ रेस्तरां से बाहर निकल गया।

एक बार का ज़िक्र है कि एक बिमल था........

*

हमारा कथा साहित्य

अश्क

सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ	१५:००
अश्क की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	३:००
छींटें	५:००
जुदाई की शाम का गीत	३:७५
काले साहब	३:५०
बैंगन का पौधा	३:२५
पिंजरा	३:५०
कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल	३:५०
दो धारा	३:५०
पलँग	३:७५

बेदी

लाजवन्ती	३:७५
दीवाला	३:२५

अब्बास

मेरा बेटा:मेरा दुश्मन	३:७५
लाल और पीला	३:७५
अवध की शाम	३:२५
पेरिस की एक शाम	३:५०

इस्मत

कुँआरी	३:५०

भैरव प्रसाद गुप्त

सपने का अन्त	३:५०
महफ़िल	४:००

वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता

शिमले की क्रीम	२:५०
पुरानी मिट्टी:नये ढाँचे	३:२५

विविध

बबुल की छाँव	शानी	३:५०
दीप दान	राजेश्वर प्रसाद सिंह	३:००
कच्चे धागे	धर्म प्रकाश आनन्द	३:७५